अल-रिसाला

सितम्बर-अक्टूबर 2023

अल-रिसाला

सितम्बर-अक्टूबर 2023

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

अज़ीम माफ़ी	3
इस्म-ए-आज़म की दुआ	4
बाद हीन	5
अक़्ल की अहमियत	7
बा-उसूल इंसान	8
बे-हिम्मती नहीं	10
आर्ट ऑफ डिफरेंस मैनेजमेंट	11
अज़ीम ख़ुश-ख़बरी	12
तकरार	15
मुताला-ए-हदीस	17
डायरी, 1986	30
इन्फॉर्मल एजुकेशन	52
कैसा अजीब इस्लाम	54
बे-ख़बरी का मसला	55
ग्रीनलैंड : एक वार्निंग	58
इस्तिताअत का उसूल	61
ख़बरनामा इस्लामी मर्कज़- 280	64
ऐलान	67

अज़ीम माफ़ी

क़ुरआन की एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

قُلْ يَاعِبَادِيَ الَّذِينَ أَسْرَفُوا عَلَى أَنْفُسِهِمْ لَا
تَقْنَطُوا مِنْ رَحْمَةِ اللهِ إِنَّ اللهَ يَغْفِرُ الذُّنُوبَ
جَمِيعًا إِنَّهُ هُوَ الْغَفُورُ الرَّحِيمُ (39:53)

"कहो कि ऐ मेरे बंदो! जिन्होंने अपनी जानों पर ज़्यादती की है, अल्लाह की रहमत से मायूस न हों। बेशक अल्लाह तमाम गुनाहों को माफ़ कर देता है। वह बख़्शने वाला, मेहरबान है।"

इस आयत के बारे में कहा गया है कि यह क़ुरआन की सबसे ज़्यादा पुर-उम्मीद आयत है (तफ़्सीर अद-दुर्रुल मंसूर, जिल्द 7, सफ़्हा 238) यानी क़ुरआन में इससे ज़्यादा वुसअत वाली आयत नहीं। अब्दुल्लाह बिन मसूद का क़ौल है—

أَكْبَرُ آيَةٍ فِي الْقُرْآنِ فَرَجًا

"क़ुरआन में सबसे गुंजाइश वाली आयत।"
(मुसन्नफ़ अब्दुर्रज़्ज़ाक़, असर 6002)

क़ुरआन की यह आयत मुझे बेहद अजीब मालूम होती है। इंसान के तमाम गुनाहों को बख़्श देना बिला शुब्हा अल्लाह की इतनी बड़ी इनायत है कि इससे बड़ी कोई इनायत नहीं हो सकती। मैं इस आयत पर सोच रहा था। मेरे दिल ने कहा कि शायद ऐसा हो कि अल्लाह की रहमत ने चाहा कि वह इस इंसान को अपनी सबसे बड़ी इनायत दे, जिसे उसने, क़ुरआन के मुताबिक़, अपने दोनों हाथों से बनाया है (38:75), मगर अल्लाह ने देखा कि इंसान का कोई अमल ऐसा नहीं, जिसे वह

इस अज़ीम इनायत की वजह बनाए। अल्लाह ने यह किया कि उसे यकतरफ़ा तौर पर अपनी रहमत के ख़ाने में डाल दिया और कहा कि मैं अपनी रहमत से इंसान के लिए उस बड़ी इनायत का ऐलान करता हूँ, वह यह कि बेशक अल्लाह तमाम गुनाहों को माफ़ कर देता है।

इंसान अपने किसी अमल की बुनियाद पर इतनी बड़ी इनायत का मुस्तहिक़ नहीं हो सकता था कि उसके तमाम गुनाह बख़्श दिए जाएँ, तो गोया अल्लाह ने कहा कि मैं इंसान के लिए अपनी ख़ुसूसी रहमत और ख़ुसूसी फ़ज़्ल का ऐलान करता हूँ यानी मैं इंसान के तमाम गुनाहों को बख़्श दूँगा। इस ऐलान-ए-आम के ज़रिये अल्लाह तआला यह कह रहा है कि ऐ इंसान! तूने ख़्वाह कोई भी ग़लती की हो, तू मेरे पास मग़फ़िरत का तालिब बनकर आ जा, मैं अपनी रहमत-ए-ख़ास से तेरे सब गुनाहों को बख़्श दूँगा और मैं बख़्शिश को तुझे बतौर तोहफ़ा दे दूँगा।

इस्म-ए-आज़म की दुआ

हदीस की किताबों में इस्म-ए-आज़म के ज़रिये की जाने वाली दुआ का बहुत बड़ा दर्जा बताया गया है। इसके मुताल्लिक़ रसूल-ए-ख़ुदा ने यह ख़बर दी है कि वह ज़रूर मक़बूल होती है (सुनन अल-तिरमिज़ी, हदीस नंबर 3544)। अहादीस में मज़कूर इस्म-ए-आज़म से मुराद मारूफ़ मअनों में 'इस्म' नहीं है, बल्कि इससे मुराद वही चीज़ है, जिसे पॉइंट ऑफ रेफ़रेंस कहा जाता है, मसलन— एक बंदा दुआ करता है और यह कहता है कि ख़ुदाया! तूने मुझे अपने दोनों हाथों से बनाया है (38:75), अब क्या तेरी रहमत का तक़ाज़ा होगा कि तू मुझे आग में डाल दे? ऐसा नहीं हो सकता। ख़ुदाया! मेरे गुनाहों को माफ़ फ़रमा। ख़ुदाया! मैं तेरी रहमत के हवाले से यह दुआ करता हूँ कि फ़ैसले के दिन तू मुझे जन्नत में दाख़िल फ़रमा।

इस्म-ए-आज़म के साथ दुआ करने का मतलब यह है कि किसी ऐसे हवाले के साथ दुआ करना, जो अल्लाह की रहमत को 'इनवोक' (invoke) करने वाली हो। ऐसी दुआ, जिसमें बंदा अपनी ग़लती का आख़िरी हद तक एतराफ़ करे। इसी के साथ अल्लाह की रहमत का आख़िरी हद तक तलबगार बन जाए। ऐसी दुआ, जो अपने किसी अमल के वास्ते को ज़रिया बनाकर अल्लाह से दुआ न की गई हो, बल्कि अल्लाह की लामहदूद रहमत को वास्ता बनाकर अपने जायज़ मुद्दे को पेश किया गया हो।

इस्म-ए-आज़म की दुआ वह है, जो अल्लाह रब्बुल आलमीन की सिफ़त को हवाला बनाकर की गई हो। ऐसी दुआ के लिए ज़रूरी है कि आदमी पूरे मअनों में आजिज़ बन जाए। जो अल्लाह की कमाल-ए-क़ुदरत के मुक़ाबले में अपने कामिल इज्ज़ का नमूना हो। इस क़िस्म की दुआ बिला शुब्हा इस्म-ए-आज़म के साथ दुआ करना है। ख़ुश-क़िस्मत हैं वह लोग, जो इस इस्म-ए-आज़म के हवाले से दुआ करने की तौफ़ीक़ पाएँ। इस्म-ए-आज़म के साथ दुआ करने का मतलब है— अल्लाह रब्बुल आलमीन की सिफ़त-ए-आज़म के साथ तालिब-ए-दुआ होना। जब आदमी अल्लाह रब्बुल आलमीन की किसी सिफ़त को शऊरी तौर पर दरयाफ़्त करे और उसके हवाले से अल्लाह से उसकी रहमत का तालिब बने, तो ऐसी दुआ ज़रूर क़ुबूल होती है।

बाद हीन

पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लाल्लाहु अलैहि वसल्लम की एक हदीस इन अल्फ़ाज़ में आई है—

ثَلَاثٌ لَا تُرَدُّ دَعْوَتُهُمْ، الإِمَامُ العَادِلُ، وَالصَّائِمُ حِينَ يُفْطِرُ، وَدَعْوَةُ المَظْلُومِ يَرْفَعُهَا فَوْقَ الغَمَامِ، وَتُفَتَّحُ لَهَا أَبْوَابُ السَّمَاءِ، وَيَقُولُ الرَّبُّ عَزَّ وَجَلَّ:وَعِزَّتِي لَأَنْصُرَنَّكِ وَلَوْ بَعْدَ حِينٍ

"तीन लोगों की दुआ रद्द नहीं की जाती। आदिल इमाम, रोज़ेदार जबकि वह इफ़्तार करे और मज़लूम की दुआ। वह उसे बादलों के ऊपर उठाता है और उसके लिए आसमान के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं। फिर अल्लाह तआला फ़रमाता है कि मेरी इज़्ज़त की क़सम! मैं ज़रूर तुम्हारी मदद करूँगा, अगरचे कुछ अर्से के बाद करूँ।" (अल-तिरमज़ी, हदीस नंबर 2526)

इस हदीस-ए-सूल से दुआ की क़ुबूलियत का उसूल मालूम होता है। वह यह कि दुआ ख़्वाह बिलकुल दुरुस्त हो, मगर उसकी क़ुबूलियत में हमेशा वक़्त लगता है। किसी फ़र्द की दुआ जब क़ुबूल की जाती है, तो वह सिर्फ़ एक दुआ का मामला नहीं होता है। अल्लाह रब्बुल आलमीन पूरे आलम को 'मैनेज' (manage) कर रहा है। कोई एक दुआ जब भी क़ुबूल की जाती है, तो वह उस वक़्त अपनी तकमील को पहुँचती है, जबकि तमाम मुताल्लिक़ तक़ाज़े पूरे हो चुके हों।

मसलन अल्लाह रब्बुल आलमीन का यह फ़ैसला था कि मक्का में रसूलुल्लाह की बैअसत के बारे में पैग़ंबर इब्राहीम की दुआ क़ुबूल की जाए (अल-बक़रह, 2:129), लेकिन इस दुआ की क़ुबूलियत में वक़्त लगा। पैग़ंबर-ए-इस्लाम का ज़ुहूर अमलन दुआ के तक़रीबन ढाई हज़ार साल बाद पेश आया, क्योंकि यह ज़रूरी था कि इससे पहले तमाम मुताल्लिक़ तक़ाज़े पूरे हो चुके हों। तारीख़ के बड़े-बड़े वाक़यात हमेशा इसी तरह लंबी मुद्दत के बाद ज़ुहूर में आते हैं। बड़ी-बड़ी दुआओं के लिए पूरी इंसानी तारीख़ को मैनेज करना पड़ता है।

ऐसी हालत में सही तरीक़ा यह है कि आदमी ख़ूब दुआएँ करे, लेकिन दुआ की क़ुबूलियत के मामले को वह अल्लाह के हवाले कर दे। अगर बज़ाहिर किसी आदमी की दुआ की क़ुबूलियत में देरी हो रही है, तो उसे यक़ीन करना चाहिए कि अल्लाह उसके लिए कुछ बेहतर करना चाहता है। अल्लाह ज़्यादा बेहतर जानता है कि किसी बंदे के लिए ख़ैर क्या है (अल-बक़रह, 2:216)। इंसान सिर्फ़ अपनी ख़्वाहिशों को जानता है, न यह कि उसके लिए ख़ैर किस चीज़ में है।

अक़्ल की अहमियत

वहब बिन मुनब्बिह (34-114 हिज्री) मशहूर ताबई हैं। उनका शुमार इस्लाम के इब्तिदाई मुअर्रिख़ीन और क़दीम आसमानी किताबों के आलिमों में होता है। उनका एक क़ौल इन अल्फ़ाज़ मे आया है—

مَا عُبِدَ اللهُ عَزَّ وَجَلَّ بِشَيْءٍ أَفْضَلَ مِنَ الْعَقْلِ

“अल्लाह की इबादत का सबसे बेहतर ज़रिया अक़्ल है।”

(किताब अल-अक़्ल इब्न अबी अल-दुन्या, असर न० 21)

यहाँ अक़्ल से मुराद शऊर है यानी सबसे बड़ा अमल यह है कि इंसान को सच्चाई की शऊरी दरयाफ़्त हो और वह शऊर की सतह पर अल्लाह की इबादत करे।

एक इबादत वह है कि आदमी एक फॉर्म का अपने आपको आदी बना ले और इस फॉर्म को दोहराकर अल्लाह की इबादत करे। यह फॉर्म की सतह पर अल्लाह की इबादत करना है। मबनी-बर-फॉर्म इबादत भी इबादत का एक दर्जा है, लेकिन ज़्यादा बड़ी इबादत यह है कि आदमी क़ुरआन और सुन्नत की तालीमात पर ग़ौर करे। वह

शऊर की सतह पर अल्लाह रब्बुल आलमीन को दरयाफ़्त करे। फिर शऊरी दरयाफ़्त की सतह पर अल्लाह के वजूद पर यक़ीन करे और उसका इबादतगुज़ार बन जाए।

जब आदमी फॉर्म की सतह पर इबादत करता है, तो वह एक ऐसी इबादत होती है, जो उसके शऊर को नहीं छूती। उसका शऊर अलग होता है और उसकी इबादत अलग, मगर जो इबादत दरयाफ़्त की सतह पर अदा की जाए, वह इंसान के पूरे वजूद का इज़्हार बन जाती है। फॉर्म की इबादत में इबादत अलग होती है और इंसान की शख़्सियत अलग, लेकिन जो इबादत शऊरी दरयाफ़्त के तहत की जाए, वह इबादत फ़रिश्तों के दर्जे की इबादत होती है। ऐसी इबादत में इंसान का एहसास इंसान की शख़्सियत का हिस्सा बन जाता है। इंसान बज़ाहिर गोश्त-पोस्त(body organs) का मजमूआ है, लेकिन असल बात यह है कि इंसान की शख़्सियत शऊरी दरयाफ़्त के नतीजे में बनती है। ऐसी इबादत में इंसान की हस्ती और उसका शऊर दोनों एक हो जाते हैं। यह वह इबादत है, जबकि इंसान ख़ुदा के क़रीब पहुँच जाता है। यही वह इबादत है, जिसके लिए क़ुरआन में यह अल्फ़ाज़ आए हैं, सज्दा कर और ख़ुदा से क़रीब हो जा। (96:19)

बा-उसूल इंसान

ज़िंदगी गुज़ारने के दो तरीक़े हैं। एक यह कि आदमी फ़ितरत के क़ानून को समझे और उसकी पैरवी करता हुआ ज़िंदगी गुज़ारे। दूसरा तरीक़ा यह है कि आदमी किसी उसूल का पाबंद न हो। जो उसके जी में आए, वह उसे करे। उसे न झूठ और सच्च की तमीज़ हो और न वह सही और ग़लत में फ़र्क़ करे।

ये दोनों रविश अपने अंजाम के एतिबार से यकसाँ नहीं हैं। जो आदमी उसूल का पाबंद हो, वह उसूल के मुताबिक़ ज़िंदगी गुज़ारे, वह अल्लाह के यहाँ कामयाब इंसान क़रार पाएगा। इस हक़ीक़त को क़ुरआन में अहले-जन्नत के हवाले से इन अल्फ़ाज़ में बयान किया गया है—

(وَأَمَّا مَنْ خَافَ مَقَامَ رَبِّهِ وَنَهَى النَّفْسَ عَنِ الْهَوَى (79:40

"और जो शख़्स अपने रब के सामने खड़ा होने से डरा और नफ़्स को ख़्वाहिश से रोका, उसके लिए अल्लाह के यहाँ जन्नत है। इसके बरअक्स जो इंसान सही और ग़लत में तमीज़ नहीं करे, वह सिर्फ़ अपनी ख़्वाहिश को जाने और उसकी पैरवी में ज़िंदगी गुज़ारे, ऐसा आदमी अल्लाह की नज़र में नाकाम इंसान है। अल्लाह के यहाँ उसकी पकड़ होगी।" (79:37-39)

बा-उसूल इंसान होना क्या है? अल्लाह ने इंसान को पैदा करके इस दुनिया में रखा और उसे कामिल आज़ादी दी। यह कामिल आज़ादी एक इंतिहाई अनोखा इख़्तियार है। इंसान से यह मतलूब है कि वह कामिल आज़ादी के बावजूद अपनी आज़ादी को डिसिप्लिन के अंदर इस्तेमाल करे यानी किसी जब्र के बग़ैर ख़ुद अपने इख़्तियार से वही करना, जो ख़ुदा इंसान से करवाना चाहता है। इंसान को अपने इख़्तियार से वही करना है, जो दूसरी मख़्लूक़ फ़ितरत (instinct) की बिना पर कर रही है। उसे ख़ुद इख़्तियार-कर्दा अख़्लाक़ियात (self-imposed ethics) कहा जा सकता है।

क़ुरआन (67:2) में बताया गया है कि अल्लाह ने इंसान को पैदा किया, ताकि वह देखे कि कौन लोग अहसन उल-अमल (best in conduct) हैं। अहसन उल-अमल का मतलब है— बा-उसूल ज़िंदगी

गुज़ारने वाले अफ़राद, मसलन— वह आदमी, जो ग़ुस्सा दिलाए जाने के बावजूद ग़ुस्से को क़ाबू में रखे वग़ैरह।

बे-हिम्मती नहीं

क़ुरआन की एक आयत इन अल्फ़ाज़ में आई है—

وَلَا تَهِنُوا وَلَا تَحْزَنُوا وَأَنْتُمُ الْأَعْلَوْنَ إِنْ كُنْتُمْ مُؤْمِنِينَ

"और हिम्मत न हारो और ग़म न करो। तुम ही कामयाब रहोगे, अगर तुम मोमिन हो।" (3:139)

'वहन' के मअनी कमज़ोरी के हैं, ख़्वाह यह कमज़ोरी अमल का हो या इरादे की। यह आयत जंग-ओ-क़िताल के बारे में नहीं है, बल्कि वह ज़िंदगी की जद्दोजहद के बारे में है। इस जद्दोजहद के लिए मोमिनाना उसूल क्या हैं, इसे यहाँ बयान किया गया है।

हक़ीक़त यह है कि ख़ालिक़ की इस दुनिया में हमेशा उस्र के साथ युस्र मौजूद रहता है यानी मसले के साथ उसका हल। ज़िंदगी की जद्दोजहद में हमेशा ऐसे लम्हात पेश आते हैं, जो मोमिन को वक़्ती तौर पर बेहिम्मत करने वाले हों, लेकिन मोमिन का एतिमाद अल्लाह रब्बुल आलमीन की नुसरत पर होता है। वह हर हाल में यह उम्मीद रखता है कि अगर वह सच्चाई के रास्ते पर है, तो अल्लाह ज़रूर उसकी मदद करेगा और उसे कामयाबी की मंज़िल तक पहुँचाएगा। बंदे की तरफ़ से जद्दोजहद के मरहले में यह शर्त है कि वह हिम्मत न हारे।

"अगर तुम मोमिन हो" का मतलब यह है कि मोमिन को अपनी तरफ़ से यह साबित करना पड़ता है कि वह अल्लाह पर भरोसा करने वाला है। वह अल्लाह पर हर हाल में यक़ीन रखे हुए है। अल्लाह की

मदद पर यक़ीन अल्लाह की रहमत को इनवोक (invoke) कर देती है। वह अल्लाह की मदद को यक़ीनी बनाता है।

एक मोमिन बंदे का तरीक़ा क्या होना चाहिए, इस सिलसिले में एक रहनुमा हदीस-ए-रसूल इन अल्फ़ाज़ आई है—

عَجَبًا لِأَمْرِ الْمُؤْمِنِ، إِنَّ أَمْرَهُ كُلَّهُ خَيْرٌ، وَلَيْسَ ذَاكَ لِأَحَدٍ إِلَّا لِلْمُؤْمِنِ، إِنْ أَصَابَتْهُ سَرَّاءُ شَكَرَ، فَكَانَ خَيْرًا لَهُ، وَإِنْ أَصَابَتْهُ ضَرَّاءُ، صَبَرَ فَكَانَ خَيْرًا لَهُ

"मोमिन का मामला अजीब है। बेशक उसके तमाम मामलों में ख़ैर है और यह किसी और के लिए नहीं है, सिवा मोमिन के। अगर उसे ख़ुशी पहुँची, तो उसने शुक्र किया। यह उसके लिए बेहतर है और अगर उसे मुसीबत पहुँची, तो उसने सब्र किया। यह उसके लिए बेहतर है।" (सहीह मुस्लिम, नंबर 2,999)

आर्ट ऑफ डिफरेंस मैनेजमेंट

तलाक़ के बारे में एक हदीस-ए-रसूल इन अल्फ़ाज़ आई है—

أَبْغَضُ الْحَلَالِ إِلَى اللَّهِ تَعَالَى الطَّلَاقُ

"अल्लाह के नज़दीक हलाल में सबसे नापसंदीदा अमल तलाक़ है।" (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 2178)

तलाक़ एक 'इब्ग़ाज़' (सबसे नापसंदीदा) अमल क्यों है? इसका जवाब यह है कि निकाह का तरीक़ा इसलिए रखा गया था कि इंसान निकाह के ज़रिये अपनी तरबियत का कोर्स मुकम्मल करे। वह कोर्स यह है कि मौजूदा दुनिया के बारे में ख़ालिक़ का नक़्शा-ए-तख़्लीक़ यह है कि आदमी इस राज़ को जाने कि इख्तिलाफ़ को मैनेज करने का तरीक़ा क्या है। ज़िंदगी में लाज़िमी तौर पर इख्तिलाफ़ात पेश आते हैं।

ये इतिख्लाफ़ात इसलिए नहीं हैं कि आदमी लड़ना-भिड़ना शुरू कर दे, बल्कि इसलिए हैं कि आदमी पुर-अमन अंदाज़ में उनको मैनेज (manage) करे।

ये इख्तिलाफ़ात किसी की साज़िश की वजह से नहीं हैं, बल्कि वह निज़ाम-ए-फ़ितरत का लाज़िमी नतीजा हैं। इन इख्तिलाफ़ात के बारे में यह मतलूब नहीं है कि आदमी उनसे लड़ना शुरू कर दे या उनको बुराई (evil) समझकर शादी के बारे में मनफ़ी राय क़ायम कर ले, बल्कि आदमी की सारी प्लानिंग इस बुनियाद पर होनी चाहिए कि जो शादी हो गई, उसके साथ उसे निबाह करना है। कोई दूसरा ऑप्शन उसके लिए नहीं।

शादी का मक़सद ज़िंदगी की ख़ुशी हासिल करना नहीं है, बल्कि यह है कि ज़िंदगी को समझकर इंसान मुस्बत (positive) अंदाज़ में इसकी तामीर करे। ऐसी तामीर, जो पूरी इंसानियत के लिए मुफ़ीद हो। शादी दो इंसानों के दरमियान इज्तिमा का नाम नहीं है, बल्कि शादी एक समाजी ज़िम्मेदारी है। शादी समाज के तमाम लोगों से ताल्लुक रखने वाला एक अमल है। शादी मुस्तक़बिल की मंसूबाबंदी है, न कि वक़्ती तौर पर ख़ुशियों की एक दुनिया बनाना। ख़ुशियों की दुनिया बनाने का नज़रिया एक ऐसा नज़रिया है, जिसके बारे में कहा जा सकता है—

Prima facie it stands rejected.

चुनाँचे दुनिया में कोई शादी उस मेयार पर पूरी नहीं उतरती। हर शादी उस मेयार पर काबिल-ए-रद्द क़रार पाती है।

अज़ीम ख़ुश-ख़बरी

यूसुफ़ बिन याक़ूब एक इसराईली पैग़ंबर थे। उनकी ज़िंदगी की कहानी को क़ुरआन की सूरह यूसुफ़ में किस क़दर तफ़्सील के साथ बयान

किया गया है और इसे क़ुरआन में 'अहसन उल-क़सस' (12:3) का टाइटल दिया गया है यानी एक बेहतरीन कहानी (best story)। यह एक वाक़या है कि हज़रत यूसुफ़ की कहानी इंसान के लिए बेहतरीन सबक़ वाली कहानी है। इस कहानी के सबक़-आमोज़ पहलू को लेखक ने अपनी तफ़्सीर 'तज़्कीर उल-क़ुरआन' में तफ़्सील से बयान किया है।

सूरह यूसुफ़ के आख़िर में इस 'अहसन उल-कसस' का ख़ुलासा इन अल्फ़ाज़ में बयान हुआ है—

حَتَّى إِذَا اسْتَيْأَسَ الرُّسُلُ وَظَنُّوا أَنَّهُمْ قَدْ كُذِبُوا جَاءَهُمْ نَصْرُنَا فَنُجِّيَ مَنْ نَشَاءُ وَلَا يُرَدُّ بَأْسُنَا عَنِ الْقَوْمِ الْمُجْرِمِينَ

"यहाँ तक कि जब रसूल मायूस हो गए और वे ख़याल करने लगे कि उनसे झूठ कहा गया था, तो उन्हें हमारी मदद आ पहुँची। बस उसे निजात मिली, जिसे हमने चाहा और मुजरिम लोगों से हमारा अज़ाब टाला नहीं जा सकता।" (12:110)

इस आयत का मतलब यह है कि वह हद आ जाए कि बंदे के लिए सब्र की आखरी हद आ जाए, तो बग़ैर किसी देरी के अल्लाह की मदद आ जाती है। अल्लाह रब्बुल आलमीन की तरफ़ से यह अज़ीम ख़ुश-ख़बरी सिर्फ़ पैग़ंबरों के लिए नहीं है, सिर्फ़ पैग़ंबर के साथियों के लिए नहीं है, बल्कि क़यामत तक आने वाले तमाम इंसानों के लिए है, जो क़ुरआन की इस सूरह का मुताला करें और इसमें जो सबक़ (takeaway) है, उसे दरयाफ़्त करके अपनी ज़िंदगी में अपनाएँ। ग़ालिबन इस पैग़ंबराना क़िस्से का सबसे बड़ा सबक़ यह है कि अल्लाह की रहमत और नुसरत उसके सच्चे तालिब के ऊपर ज़रूर आती है। यह नामुमकिन है कि वह सच्चे तालिब की तरफ़ न आए। अलबत्ता यह शर्त है कि तालिब को चाहिए कि वह पूरे यक़ीन और सब्र के साथ ख़ुदा की नुसरत का इंतज़ार करे, वह किसी भी

हाल में मायूसी का शिकार न हो, वह हर हाल में अल्लाह रब्बुल आलमीन की रहमत का उम्मीदवार बना रहे। अल्लाह ने आग़ाज़-ए-तख्लीक़ में यह ऐलान कर दिया—

إِنَّ رَحْمَتِي غَلَبَتْ غَضَبِي

"बेशक मेरी रहमत मेरे ग़ज़ब के ऊपर ग़ालिब है।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3,194)

अल्लाह की नुसरत का यह क़ानून क्यों है कि बंदे की दुआ उस वक़्त क़ुबूल होती है, जबकि बंदे के ऊपर मायूसी की आख़िरी हद आ जाए। इसकी वजह यह है कि अल्लाह की रहमत तो यक़ीनी तौर पर बंदे के लिए अल्लाह का अता किया हुआ एक हक़ है, वह ज़रूर पूरा होकर रहता है— कभी एक शक्ल में और कभी दूसरी शक्ल में, मसलन— पैग़ंबर सुलेमान पर अल्लाह की रहमत किसी शदीद इम्तिहान के बग़ैर आई। इसके बरअक्स कई दूसरे पैग़ंबरों पर अल्लाह रब्बुल आलमीन की रहमत शदीद इम्तिहान के बाद आई, यहाँ तक कि उस वक़्त जबकि पैग़ंबर और उनके साथी मायूसी की हालत को पहुँच गए।

ऐसा क्यों होता है? इसका सबब यह है कि हर अच्छी चीज़ की एक क़ीमत होती है और अल्लाह की रहमत सबसे ज़्यादा अज़ीम नेमत है। इसलिए उसका इस्तिहक़ाक़ भी अज़ीम क़ीमत की अदायगी के बाद होता है और वह क़ीमत यह है कि बंदे को अल्लाह की क़ुदरत और उसकी रहमत पर इतना ज़्यादा यक़ीन हो कि शदीद हालात के बावजूद वह अल्लाह की रहमत से मायूस न हो, वह आख़िरी हद तक अल्लाह की रहमत का उम्मीदवार बना रहे।

मज़्कूरा आयत में यह बताया गया है कि मायूसी की आख़िरी हद पर पहुँचने के बाद अल्लाह की नुसरत आती है। इस मायूसी का मतलब क्या है? इसमें दरअसल अल्लाह के क़ानून-ए-फ़ितरत को बताया गया

है यानी अल्लाह की नुसरत दाई को ज़रूर पहुँचती है, लेकिन इसका प्रोसेस यह है कि दूसरे इंसानों की आज़ादी को बरक़रार रखते हुए एक अमल जारी किया जाता है, जिसके नतीजे में दाई (दावत और तबलीग़ करने वाला) को मतलूब नुसरत कभी देरी से मिलती है। ख़ालिक़ की तरफ़ से इस अमल की तकमील में हमेशा वक़्त दरकार होता है। दाई को चाहिए कि उस वक़्त को वह इंतज़ार के ख़ाने में डाले। यह इंतज़ार अगर मायूसी की आख़िरी हद तक पहुँच जाए, तब भी दाई को यह यक़ीन रखना चाहिए कि उसका रब उसे तबाही से बचाएगा और अपने वक़्त पर वह ज़रूर अपनी नुसरत को नाज़िल फ़रमाएगा, जो दाई के लिए मंज़िल तक पहुँचने का सबब बन जाएगा। सब्र दरअसल दाई की तरफ़ से इंतज़ार की मुद्दत का नाम है। दाई को चाहिए कि वह हमेशा अपनी उम्मीद को बरक़रार रखे। अल्लाह की तरफ़ से नुसरत के नुज़ूल से वह मायूस न हो।

तकरार

'गीतांजलि' रवींद्रनाथ टैगोर (1861-1941) की मशहूर किताब है। इस किताब के अंग्रेज़ी तर्जुमे पर उन्हें 'नोबेल पुरूस्कार' मिला था। यह किताब असलन बांग्ला ज़बान में लिखी गई थी। उसके बाद इसका तर्जुमा मुख़्तलिफ़ ज़बानों में हुआ। इसकी एक नज़्म (नंबर 38) का इब्तिदाई मिसरा यह है—

That I want thee, only thee— let my heart repeat without end.

मैं तुझे चाहता हूँ, सिर्फ़ तुझे और किसी को नहीं। मेरे दिल को इसकी तकरार बहुत ज़ियादा करने दे।

किसी चीज़ से जब आदमी का ताल्लुक़ दिलचस्पी और मुहब्बत के दर्जे का हो जाए, तो वहाँ तकरार (repetition) का तसव्वुर ख़त्म हो जाता है। फिर उसकी हर तकरार आदमी को नया लुत्फ़ देती है। उसकी तकरार से आदमी कभी नहीं उकताता। इसकी एक आम मिसाल सिगरेट है। आदमी सिगरेट को बार-बार पीता है और रोज़ाना पीता रहता है, मगर उसे कभी यह ख़याल नहीं आता कि वह एक चीज़ की तकरार कर रहा है। हालाँकि उसी शख़्स को अगर कोई नापसंदीदा चीज़ दी जाए, तो चंद बार के इस्तेमाल के बाद वह उससे उकता जाएगा और उसे तकरार कहकर छोड़ देगा।

मैंने कई बार ऐसे नौजवान देखे हैं, जिन्होंने अभी कोई पिक्चर (movie) देखी थी। अगरचे उनमें से हर एक उस पिक्चर (movie) को देखे हुए था, मगर वे उसकी कहानी और उसके मकालमे (संवाद) इस तरह एक-दूसरे को सुना रहे थे, जैसे कि वे कोई नई बात कह रहे हों और सुनने वाले उसे इस तरह सुन रहे थे, जैसे वे बिलकुल नई बात सुन रहे हों। पिक्चर (movie) के साथ उनकी बढ़ी हुई दिलचस्पी ने उनके लिए तकरार का तसव्वुर हज़फ़ कर दिया था।

जब किसी के सामने कोई बात कही जाए और वह उसे 'तकरार' कहकर बे-लुत्फ़ होने लगे, तो समझ लीजिए कि यह बात उसकी ज़िंदगी में दिलचस्पी बनकर दाख़िल नहीं हुई है। अगर वह उसके लिए हक़ीक़ी दिलचस्पी की चीज़ होती, तो उसकी हर तकरार उसे नया लुतफ़ देती, न यह कि वह उसे बे-लुत्फ़ बना दे।

मुताला-ए-हदीस

शरह मिश्कात अल-मसाबीह

(हदीस नंबर 72-85)

अब्दुल्लाह बिन जाबिर रज़ियल्लाहु अन्हु कहते कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

> "शैतान इससे मायूस हो चुका है कि जज़ीरा-ए-अरब में नमाज़ी लोग उसकी परस्तिश करें, लेकिन वह उन्हें एक-दूसरे के ख़िलाफ़ भड़काने से मायूस नहीं।"
>
> (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2,812)

रसूल और असहाब-ए-रसूल के ज़रिये जो इंक़लाब आया, उसने मज़हबी बुतपरस्ती को इतना ज़्यादा बेबुनियाद साबित कर दिया कि अब इस क़िस्म की मुशरिकाना रविश में न समाजी इज़्ज़त का पहलू बाक़ी रहा और न माद्दी मफ़ाद का। इसलिए उम्मत के बाद की नस्लों में गुमराही खुली बुतपरस्ती के रास्ते से नही आएगी, बल्कि वह नफ़्स-परस्ती और मफ़ाद-परस्ती के रास्ते से आएगी। इस दूसरी गुमराही का इज़्हार इस तरह होगा कि लोग ज़ाती मस्लहतों के लिए आपस में एक-दूसरे से लड़ेंगे।

अब्दुल्लाह बिन अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास एक आदमी आया। उसने कहा कि मैं अपने दिल में ऐसी बात पाता हूँ कि ज़बान से उसे बोलने से ज़्यादा मुझे पसंद है कि मैं जलकर कोयला हो जाऊँ। आपने फ़रमाया कि उस ख़ुदा का शुक्र, जिसने इस तरह के मामले को वसवसा क़रार दिया। (सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 5,112)

मौजूदा दुनिया में आदमी फ़ित्नों और आज़माइशों के दरमियान जीता है। इसलिए कोई आदमी इससे नहीं बच सकता कि उसके दिल में ग़लत क़िस्म के ख़यालात आएँ, लेकिन इंसान की पकड़ बोले हुए क़ौल और किए हुए अमल पर है, दिल के अंदर गुज़रे हुए ख़यालात पर नहीं।

अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "इंसान के ऊपर एक असर शैतान का है और एक असर फ़रिश्ते का। बस शैतान का असर तो शर से डराना और हक़ को झुठलाना है और फ़रिश्ते का असर नेकी पर उभारना और हक़ की तस्दीक़ करना है। बस जो आदमी उसे पाए, तो उसे जानना चाहिए कि यह अल्लाह की तरफ़ से है और फिर वह अल्लाह का शुक्र अदा करे और जो शख़्स दूसरी कैफ़ियत अपने अंदर पाए, तो वह शैतान के मुक़ाबले में अल्लाह से पनाह माँगे।" फिर आपने क़ुरआन (2:268) की आयत पढ़ी— "शैतान तुम्हें मोहताजी से डराता है और बुरी बात की तलक़ीन करता है।"

(सुनन अल-तिरमिजी, हदीस नंबर 2,988)

इंसान के अंदर दो मुख़्तलिफ़ क़िस्म के काम पर उभारने वाले की ख़बर इसलिए दी गई है, ताकि जब वह अपनी ज़िंदगी में उनमें से किसी की अलामत देखे, तो वह उसकी हक़ीक़त को पहचान ले। एक अलामत पर वह शैतान से बचने की कोशिश करे और दूसरी अलामत पर वह ख़ुदा का शुक्र अदा करते हुए उससे क़रीब हो जाए।

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि लोग पूछताछ करते रहेंगे, यहाँ तक कि कहा जाएगा कि मख़्लूक़ को ख़ुदा ने पैदा किया, तो ख़ुदा को किसने पैदा किया। फिर जब लोग ऐसा कहें तो तुम कहो—

اللّٰهُ اَحَدٌ ۔اَللّٰهُ الصَّمَدُ۔لَمْ يَلِدْ وَلَمْ يُوْلَدْ
۔وَلَمْ يَكُنْ لَّهٗ كُفُوًا اَحَدٌ

"अल्लाह एक है। अल्लाह बेनियाज़ है। न उसकी कोई औलाद है और न वह किसी की औलाद और कोई उसके बराबर का नहीं। फिर वह अपने बाएँ तरफ़ तीन बार थुतकारे और शैतान के मुक़ाबले में अल्लाह की पनाह माँगे।"
(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4,722)

यह हदीस मौजूदा दौर में पैदा होने वाली अक़्लियत-पसंदी की पेशीनगोई है, मगर इसमें यह भी बता दिया गया कि इस क़िस्म का सवाल ख़ुद वक़्त के अक़्ली नुक्ता-ए-नज़र से सरासर बे-बुनियाद होगा। ख़ुदा का वजूद इतना ज़्यादा वाज़ेह है कि वह जिस तरह पिछले ज़माने में साबितशुदा था, उसी तरह वह बाद के ज़माने में भी है। इस बहस के ज़िमन में यह सवाल बिलकुल ग़ैर-मुताल्लिक़ है कि ख़ुदा को किसने पैदा किया। ख़ुदा अगर पैदा करने से वजूद में आए, तो वह कायनात को पैदा करने वाला नहीं बन सकता। ख़ुदा अपने आपमें मौजूद है, इसीलिए वह इस कायनात को वजूद में ला सका। कायनात की मौजूदगी ख़ुदा की मौजूदगी का सबूत है। अगर हम ख़ुदा के वजूद का इनकार करें, तो हमें कायनात के वजूद का भी इनकार करना पड़ेगा। चूँकि हम कायनात के वजूद का इक़रार करने पर मजबूर हैं, इसलिए हम ख़ुदा के वजूद का इक़रार करने पर भी मजबूर हैं।

इस मामले में ख़ुद अक़्ली साइंस की रूह से कोई दूसरा इंतिख़ाब हमारे लिए सिरे से मुमकिन नहीं। जदीद साइंस ने कायनात के ज़ुहूर के बारे में जो हक़ाइक़ दरयाफ़्त किए हैं, उसके बाद अब इंसान के लिए इंतिख़ाब (choice) बे-ख़ुदा कायनात और बा-ख़ुदा कायनात के दरमियान नहीं है, बल्कि बा-ख़ुदा कायनात और ग़ैर-मौजूद कायनात के दरमियान है। अगर हम ख़ुदा के वजूद को न मानें, तो हमें कायनात

के वजूद का भी इनकार करना पड़ेगा। चूँकि हम कायनात के वजूद का इनकार नहीं कर सकते, इसलिए हम ख़ुदा के वजूद का भी इनकार नहीं कर सकते। जदीद साइंसी दरियाफ़्तों के बाद ख़ुदा के वजूद को मानना उतना ही लाज़िमी बन चुका है, जितना कायनात के वजूद को मानना। (तफ़्सील के लिए देखये लेखक की यह किताबीं, 'मज़हब और जदीद चैलेंज', 'ख़ुदा की दरियाफ़्त' वग़ैरह किताबों को देखिए।)

अनस बिन मालिक रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "लोग बराबर सवाल करते रहेंगे, यहाँ तक कि वे कहेंगे कि अगर ख़ुदा ने तमाम चीज़ों को पैदा किया है, तो ख़ुदा को किसने पैदा किया?"

यह बुख़ारी की रिवायत है और मुस्लिम की रिवायत में इस तरह है—

> "अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि तुम्हारी उम्मत के लोग बराबर कहते रहेंगे— यह क्या और यह क्या, यहाँ तक कि वे कहेंगे कि ख़ुदा ने मख़्लूक़ात को पैदा किया, तो ख़ुदा को किसने पैदा किया?" (मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 7,296; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 136)

इस हदीस से मालूम होता है कि बाद के ज़माने में जब अक़्ली बहस का ज़ोर बढ़ेगा, तो ख़ुद उम्मत-ए-मुस्लिमा के लोग भी ज़ेहनी तौर पर इससे मुतास्सिर हो जाएँगे और वे भी वक़्त की बोली बोलने लगेंगे। उस ज़माने में इस क़िस्म की गुमराही का मुकाबले करने के लिए जो फ़िक्री जद्दोजहद दूसरे लोगों पर की जाएगी, वह ख़ुद उम्मत की फ़िक्री इस्लाह के लिए भी ज़रूरी होगी।

उस्मान बिन अबी अलआस रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि मैंने कहा— "ऐ अल्लाह के रसूल! शैतान मेरे और मेरी नमाज़ और मेरी किरात के दरमियान हाइल हो जाता है और मुझ पर नमाज़ में शुब्हा डालता है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— 'यह वह शैतान है, जिसे ख़िंज़ब कहा जाता है। बस जब तुम उसे महसूस करो, तो तुम उससे अल्लाह की पनाह माँगो और अपने बाईं तरफ़ तीन बार थुतकारो।' बस मैंने ऐसे ही किया, तो अल्लाह ने उसे मुझसे दूर कर दिया।" (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 68)

इस हदीस में जो मख़्सूस तरीक़ा बताया गया है, उसकी हैसियत इज़ाफ़ी है। इसका असल मुद्दा यह है कि जब भी किसी आदमी को यह महसूस हो कि शैतान उसे ख़ुदा की याद से हटा रहा है, तो वह फ़ौरन अल्लाह से शैतान की हिफाज़त के दुआ करके शैतान से पनाह माँगे। यह गोया अपने आपको ग़फ़लत से निकालकर शऊर की हालत में लाना है। यह ख़ुदा की मदद से शैतान के ऊपर क़ाबू पाना है। क़ुरआन में रहनुमाई की गई है— "जो लोग डर रखते हैं, जब कभी शैतान के असर से कोई बुरा ख़याल उन्हें छू जाता है, तो वे फ़ौरन (अल्लाह को) याद करते हैं और फिर उसी वक़्त उनको सूझ आ जाती है।" (7:201)

क़ासिम बिन मुहम्मद ताबई से एक आदमी ने सवाल किया। उसने कहा कि मुझे अपनी नमाज़ में वहम पेश आता है और यह मुझ पर बहुत गिराँ गुज़रता है। उन्होंने उस आदमी से कहा कि तुम अपनी नमाज़ जारी रखो, क्योंकि यह चीज़ तुमसे जाने वाली नहीं, यहाँ तक कि तुम अपनी नमाज़ पूरी करोगे और कहोगे (अपने दिल) कि मैंने अपनी नमाज़ सही तरीके से पूरी नहीं की। (मुवत्ता इमाम मालिक, हदीस नंबर 3)

इस मामले का ताल्लुक़ जिस तरह नमाज़ से है, उसी तरह इसका ताल्लुक़ दूसरे दीनी आमाल से भी है। इस दुनिया में यह मतलूब

नहीं कि आदमी का एहसास यह हो कि मैंने मेयारी अमल कर लिया। इसके बरअक्स आदमी का एहसास यह होना चाहिए कि मुझसे मेयारी अमल न हो सका। अपने अमल को कामिल समझना मुनाफ़िक़त की अलामत है और अपने अमल को नाक़िस समझना इख़्लास की अलामत।

अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "अल्लाह ने मख़्लूक़ की तक़दीरों को लिख दिया है— ज़मीन व आसमान की पैदाइश से पच्चास हज़ार साल पहले। आपने फ़रमाया कि उस वक़्त अल्लाह का तख़्त पानी के ऊपर था।" (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 16)

यहाँ तक़दीर से मुराद मंसूबा-ए-इलाही है। ख़ुदा की पैदा की हुई ज़मीन में पहले पानी का दौर आया, उसके बाद सतह-ए-ज़मीन पर ज़िंदगी का दौर शुरू हुआ। हज़ारों साल पहले तक़दीर को लिखने का मतलब यह है कि ख़ुदा ने पेशगी तौर पर इस कोर्स को मुतय्यन कर दिया, जिसके तहत इंसानी क़ाफ़िले को अपना सफ़र करना था और इस फ़ितरी क़ानून को तय फ़रमा दिया, जिसके दायरे में हर फ़र्द को अपना अमल अंजाम देना था।

जदीद साइंस की रोशनी में जब हम इस मामले पर ग़ौर करते हैं, तो तक़दीर का एक अहम सुराग़ (clue) डी०एन०ए० (DNA) की शक्ल में मिलता है। जदीद साइंसी तहक़ीक़ बताती है कि हर इंसान का डी०एन०ए० उसकी शख़्सियत का मुकम्मल एनसाइक्लोपीडिया है। हर इंसान के डी०एन०ए० में उसकी शख़्सियत की तमाम ख़ुसूसियात कोड की शक्ल में दर्ज हैं, जिनकी मुसलसल तौर पर डी-कोडिंग (de-coding) होती रहती है। आदमी के बेशतर आदात-ओ-अफ़ाल इसी डी०एन०ए० के ज़ेर-ए-असर वाक़े होते हैं।

अब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "हर चीज़ मुक़र्रर अंदाज़े पर है, यहाँ तक कि आजिज़ी और दानिशमंदी भी।"

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 18)

इंसानों की सलाहियतें यकसाँ नहीं। इस दुनिया में हर इंसान को अलग-अलग इस्तिदाद के साथ पैदा किया गया है। दुनिया के निज़ाम को कामयाबी के साथ चलाने के लिए ऐसे लोग भी दरकार हैं, जो जिस्मानी ताक़त में ज़्यादा हों और ऐसे लोग भी, जिनके अंदर ज़ेहनी ताक़त ज़्यादा पाई जाए। ये मुक़द्दरात हैं और वे इसलिए हैं, ताकि इस दुनिया में ज़िंदगी का निज़ाम मज्मूई तौर पर कामयाबी के साथ चलता रहे।

अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "आदम और मूसा ने अपने रब के सामने हुज्जत की, तो आदम इस बहस में मूसा पर ग़ालिब आ गए। मूसा ने कहा— 'क्या आप वह आदम हैं, जिन्हें अल्लाह ने अपने हाथ से पैदा किया और आपके अंदर अपनी रूह फूँकी और अपने फ़रिश्तों से आपको सजदा कराया और आपको अपनी जन्नत में ठहराया। फिर आपने अपनी ग़लती की वजह से लोगों को नीचे उतार दिया।' आदम ने कहा कि आप वह मूसा हैं, जिसे अल्लाह ने अपनी पैग़ंबरी के लिए और अपनी हम-कलामी के लिए चुना और आपको तख़्तियाँ दीं, जिसमें हर चीज़ का बयान है और आपको हम-कलामी के ज़रिये क़ुरबत दी। क्या आप जानते हैं कि अल्लाह ने मेरी पैदाइश से कितने अरसा पहले तौरात को लिख दिया था? मूसा ने कहा कि 40 साल पहले। आदम ने कहा कि क्या आपने इसमें लिखा हुआ पाया कि आदम ने अपने रब की ना-फ़रमानी की, फिर वे रास्ते से दूर हो गए

(20:121)? मूसा ने कहा कि हाँ! आदम ने कहा कि क्या आप मुझे एक ऐसे फ़ेल की मलामत करते हैं, जो अल्लाह ने लिख दिया था कि मैं इसे करूँ और यह मेरी पैदाइश से 40 साल पहले हो चुका था? रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि फिर आदम मूसा पर ग़ालिब आ गए।" (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2,652)

इंसान आज़ाद है या मजबूर? इस सवाल का जवाब यह है कि यह फ़िफ़्टी-फ़िफ़्टी का मामला है। इस हदीस का मतलब इंसान को यह बताना है कि वह दो चीज़ों के दरमियान है। एक, तक़दीर-ए-इलाही और दूसरा, ज़ाती इख़्तियार। इंसान एक एतिबार से आज़ाद है और दूसरे एतिबार से वह मजबूर है। अपनी रोज़मर्रा की ज़िंदगी में हर औरत और मर्द आज़ादाना तौर पर अपना काम करते हैं, लेकिन इसी के साथ वे बार-बार महसूस करते हैं कि उनकी ज़ात के बाहर भी कुछ ताक़तें हैं, जिन्हें नज़र-अंदाज करके वे इस दुनिया में अपना काम नहीं कर सकते।

ये दोतरफ़ा तक़ाज़े क्या हैं? असल यह है कि एक है ख़ुद इंसान की शख़्सियत और दूसरी चीज़ है वे हालात, जिनके दरमियान किसी आदमी को अपना काम करना पड़ता है। इन हालात को फ़ितरत का क़ायम किया हुआ इंफ्रास्ट्रक्चर (infrastructure) कहा जा सकता है। जहाँ तक इंसान की ज़ात का ताल्लुक़ है, वह पूरी तरह आज़ाद है। इंसान को इख़्तियार है कि वह जिस तरह चाहे सोचे, वह जो बात चाहे बोले, जिस रुख़ पर चाहे अपनी ज़िंदगी का सफ़र तय करे। इस एतिबार से इंसान मुकम्मल तौर पर आज़ाद है।

दूसरी चीज़ वह है, जिसे इंफ्रास्ट्रक्चर कहा जा सकता है। यह इंफ्रास्ट्रक्चर मुकम्मल तौर पर फ़ितरत का क़ायम किया हुआ है। यह इंफ्रास्ट्रक्चर दुनिया में अपने आप क़ायम है। इंसान को यह ताक़त हासिल नहीं कि वह इस इंफ्रास्ट्रक्चर को बदल डाले या उसे नज़र-अंदाज करके अपने अमल की मंसूबाबंदी करे।

मिसाल के तौर पर एक इंसान ज़मीन पर चलता है। यह चलना इंसान की अपनी आज़ादी का मामला है, लेकिन इस चलने के लिए ज़रूरत है कि आदमी के क़दमों के नीचे एक ज़मीन हो। इस ज़मीन के अंदर क़ुव्वत-ए-कशिश (gravity) हो और फिर इंसान के ऊपर हवा का दबाव हो वग़ैरह। ये चीज़ें बाहिरी इंफ्रास्ट्रक्चर की हैसियत रखती हैं और इस बाहिरी इंफ्रास्ट्रक्चर के बग़ैर चलने का अमल मुमकिन नहीं— न किसी औरत के लिए और न किसी मर्द के लिए। यही मामला दूसरी इन तमाम चीज़ों का है जिनके दरमियान इंसान अपना अमल करता है।

इसी तरह इंसान साँस लेता है। साँस लेना या न लेना इंसान के अपने इख़्तियार की बात है, लेकिन दुरुस्त तौर पर साँस लेने के लिए ज़रूरी है कि बाहर की दुनिया में ऑक्सीजन की सप्लाई का निज़ाम मौजूद हो। ऑक्सीजन की मुसलसल सप्लाई के बग़ैर कोई आदमी साँस नहीं ले सकता, जबकि साँस के बग़ैर इंसान के लिए इस दुनिया में ज़िंदा रहना मुमकिन नहीं।

यह सूरतेहाल बताती है कि मौजूदा दुनिया में इंसान दोतरफ़ा तक़ाज़ों के दरमियान है। एक एतिबार से वह आज़ाद है और दूसरे एतिबार से वह मजबूर है। अपने इरादे के इस्तेमाल के एतिबार से वह पूरी तरह आज़ाद है, लेकिन इस एतिबार से वह मजबूर है कि अपने इरादे का आज़ादाना इस्तेमाल वह ख़ालिक़ के मुक़र्रर किए हुए इंफ्रास्ट्रक्चर के बग़ैर नहीं कर सकता। जबर-ओ-इख़्तियार की इस दरमियानी सूरतेहाल को अक़ीदा के इल्म में वसतिय्या कहा जाता है यानी एतदाल की राह। यही वसतिय्या का नज़रिया इस मामले में सही है।

आदमी अगर सिर्फ़ पहली चीज़ को याद रखे, तो उसके अंदर बे-अमली पैदा होगी और अगर वह सिर्फ़ दूसरी चीज़ को याद रखे,

तो उसके अंदर ग़ैर-हक़ीक़त-पसंदाना एतिमाद पैदा होगा। मोतदिल (balanced) शख़्सियत की तामीर के लिए ज़रूरी है कि आदमी की निगाह दोनों हक़ीक़तों के ऊपर यकसाँ तौर पर रहे।

अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हमसे फ़रमाया— "और रसूलुल्लाह सच्चे और भरोसे मंद है— तुममें से हर एक का वजूद उसकी माँ के पेट में 40 दिन तक नुत्फ़े की सूरत में रहता है। फिर वह इतने ही दिनों तक अल्क़ा की सूरत में रहता है। फिर वह इतने ही दिनों तक गोश्त के टुकड़े की सूरत में रहता है, फिर अल्लाह एक फ़रिश्ते को चार बातों के साथ भेजता है। फिर वह लिखता है— उसका काम और उसकी मौत और उसका रिज़्क़ और यह कि वह बुरा है या अच्छा । फिर उसके अंदर रूह फूँकी जाती है। पस उस ज़ात की क़सम, जिसके सिवा कोई माबूद नहीं। तुममें से एक शख़्स अहले-जन्नत वाला काम करता रहता है, यहाँ तक कि उसके और जन्नत के दरमियान सिर्फ़ एक हाथ का फ़ासला रह जाता है। फिर तक़दीर का लिखा हुआ उसपर ग़ालिब आ जाता है। फिर वह अहले-दोज़ख़ का काम करता है और वह दोज़ख़ में जा गिरता है। इसी तरह तुममें का एक शख़्स दोज़ख़ियों का अमल करता रहता है, यहाँ तक कि उसके और दोज़ख़ के दरमियान सिर्फ़ एक हाथ का फ़ासला बाक़ी रहता है। फिर तक़दीर का लिखा हुआ उसपर ग़ालिब आ जाता है और वह अहले-जन्नत का अमल करता है। फिर वह जन्नत में दाख़िल हो जाता है।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3,208; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 1)

इस हदीस में एक मिसाल की सूरत में फ़ितरत के एक क़ानून को बताया गया है और वह यह कि आदमी के अंजाम का दारोमदार

उसके आख़िरी अमल पर है। आदमी को चाहिए कि अगर उसे नेक अमल की तौफ़ीक़ मिल रही है, तो वह इस पर घमंड की नफ़्सियात में मुब्तला न हो। ऐन मुमकिन है कि बाद में पेश आने वाली किसी आज़माइश में वह पूरा न उतरे और उसकी ज़िंदगी का रुख़ बदल जाए। इसी तरह अगर कोई शख़्स बुराई में मुब्तला हो, तो लोगों को उससे नफ़रत नहीं करनी चाहिए। क्या मालूम उसपर कोई ऐसा तजुर्बा गुज़रे, जो उसकी इस्लाह कर दे और उसकी ज़िंदगी का रुख़ बुराई से नेकी की तरफ़ मुड़ जाए।

सोहेल बिन साद रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "एक बंदा अहले-दोज़ख़ का अमल करता है, हालाँकि वह अहले-जन्नत में से होता है और एक बंदा अहले-जन्नत का अमल करता है, हालाँकि वह अहले-दोज़ख़ में से होता है और आमाल का एतिबार आख़िरी अमल पर है।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6,607; सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 112)

इस हदीस का मतलब यह है कि आदमी के अंजाम का फ़ैसला ख़ुसूसी इम्तिहान के वक़्त होता है। यह रिवायत कंडीशनिंग (conditioning) के उसूल से और भी वाज़ेह हो जाती है। जैसा कि एक हदीस में आया है कि हर पैदा होने वाला लाज़िमी तौर पर अपने माहौल से मुतास्सिर होता है, यहाँ तक कि वह माहौल का प्रोडक्ट बन जाता है (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1,385)। ऐसी हालत में ईमान क़ुबूल करना उसके ज़ेहन के लिए एक ऐसी हक़ीक़त को क़ुबूल करना है, जो उसके लिए बिलकुल नई है। इसलिए हमेशा यह अंदेशा रहता है कि आदमी नई चीज़ को मुतास्सिर ज़ेहन (conditioned mind) के साथ देखे

और उसे दुरुस्त तौर पर समझ न सके। ऐसी हालत में हर शख़्स के लिए ज़रूरी है कि वह ईमान लाने से पहले पेशगी तौर पर एक काम करे यानी अपने ज़ेहन की डी-कंडीशनिंग (deconditioning), ताकि वह ईमान-ओ-मारिफ़त के आइटम को खुले ज़ेहन के साथ देखे और बे-आमेज़ सूरत में उसे ले सके। ईमान गोया सोच को पाक करने (purification of the mind) का मामला है। इस पाकीज़गी (purification) के बग़ैर कोई भी शख़्स ईमान को हक़ीक़ी तौर पर नहीं पा सकता। इसके बग़ैर अगर वह ईमान क़ुबूल करता है, तो उसका ईमान, क़ुरआन के मुताबिक़, दाख़िल-ए-क़ल्ब ईमान (49:14) न होगा, बल्कि वह ईमान लिप सर्विस (lip service) के तौर पर होगा और लिप सर्विस वाला ईमान अल्लाह के यहाँ मोतबर नहीं।

एक आदमी बज़ाहिर अच्छा अमल करता है, मगर कंडीशनिंग की वजह से उसके दिल में खोट रहता है। इम्तिहान के वक़्त यह खोट सामने आ जाता है और वह उसे बुरे अंजाम का मुस्तहिक़ बना देता है। इसी तरह एक आदमी बज़ाहिर बुरा अमल करता है, मगर उसके दिल के अंदर सच्चाई की तलाश का जज़्बा मौजूद होता है। फिर कोई वाक़या पेश आता है, उसके बाद यह चिंगारी भड़क उठती है और उसकी ज़िंदगी बुराई से हटकर नेकी के रुख़ पर चलने लगती है। इस तरह एक बज़ाहिर बुरा शख़्स मुतलाशी हक़ होने की बिना पर आख़िर में जन्नती बन जाता है और इसके बरअक्स एक बज़ाहिर अच्छा शख़्स अपनी कंडीशनिंग की वजह से अब्दी तौर पर नाकाम लोगों की फ़ेहरिस्त में शामिल हो जाता है।

आईशा रज़ियल्लाहु अन्हा कहती हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को एक अंसारी बच्चे के जनाज़े में बुलाया गया।

मैंने कहा— "ऐ ख़ुदा के रसूल, उसे ख़ुश-ख़बरी हो कि वह जन्नत की चिड़ियों में से एक चिड़िया है, जिसने न तो गुनाह किया और न गुनाह का वक़्त पाया।" आपने कहा— "ऐ आईशा, (जो तुमने कहा) उसके सिवा भी हो सकता है। अल्लाह ने कुछ जन्नत वाले पैदा किए, जिन्हें उनके बाप की पीठों में जन्नत के लिए बनाया। कुछ आग वाले पैदा किए, जिन्हें उनके बाप की पीठों में दोज़ख़ के लिए बनाया।"

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2,662)

इस हदीस में ग़ालिबन इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि जन्नत में दाख़िले का ताल्लुक़ उम्र से या किसी और निसबत से नहीं है। जन्नत एक बेहद क़ीमती जगह है। क़ुरआन के मुताबिक़ जन्नत वह जगह है, जहाँ तारीख़-ए-इंसानी की रब्बानी शख़्सियात सच्चाई की दुनिया में अब्दी जगह पाएँगे (54:55)। जन्नत ख़ुदा के पड़ोस (66:11) में रहने का नाम है। इसमें दाख़िले का इस्तिहक़ाक़ किसी को सिर्फ़ अल्लाह रब्बुल आलमीन की रहमत से मिलेगा। कोई और चीज़ आदमी के लिए जन्नत की क़ीमत नहीं बन सकती।

अली इब्न अबी तालिब रज़ियल्लाहु अन्हु कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया— "तुममें से हर शख़्स का ठिकाना लिखा जा चुका है— या जहन्नम में या जन्नत में।" लोगों ने कहा कि ऐ ख़ुदा के रसूल, क्या हम अपने लिखे हुए पर भरोसा कर लें और अमल करना छोड़ दें? आपने — "तुम लोग अमल करते रहो। हर शख़्स के लिए उसी चीज़ को आसान किया जाएगा, जिस तरफ़ वह बढ़ेगा। चुनाँचे जो शख़्स हक़ का मुतलाशी हो, उसे हक़ के रास्ते की तौफ़ीक़ दी जाती है और जो आदमी बुरे लोगों में से हो, तो उसके लिए ज़लालत का रास्ता आसान हो जाता है। इसके बाद आपने क़ुरआन की सूरह अल-लैल से ये आयतें (5-10) तिलावत फ़रमाईं— बस जिसने

माल ख़र्च किया और तक़वे का तरीक़ा इख़्तियार किया और उसने भलाई को सच माना, तो उसे हम आसान रास्ते के लिए सहूलत देंगे और जिसने बुख़्ल किया और बेपरवाह रहा और भलाई को झुठलाया, तो हम उसे मुश्किल रास्ते के लिए सहूलियत देंगे।"
(मुत्तफ़िक़ अलैह, सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 1,362, सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2,039)

'आसान रास्ता' यानी फ़ितरी रास्ता या जन्नत का रास्ता। 'मुश्किल रास्ता' यानी अब्दी नाकामी का रास्ता। क़ुरआन की सूरह अल-लैल की मज़्कूरा आयतों की रोशनी में इस हदीस की तशरीह की जाए, तो इसका मतलब यह होगा कि जन्नत या जहन्नम किसी को इत्तिफ़ाक़ी अस्बाब से नहीं मिलती। जिस आदमी के अंदर सआदत की चिंगारी हो यानी जो सच्चाई का मुतलाशी हो, उसे अल्लाह तआला क़ुबूलियत देकर उसके लिए जन्नत का रास्ता आसान कर देता है और जिसके अंदर बुराई का मर्ज़ हो, उसे ऐसे रास्ते की तरफ़ ढील दे दी जाती है, जो जहन्नम की तरफ़ जाने वाला हो।

डायरी, 1986

5 मार्च, 1986

आजकल मेरे यहाँ दिल्ली के दो अंग्रेज़ी अख़बार रोज़ाना आते हैं। एक 'हिंदुस्तान टाइम्स' और दूसरा 'टाइम्स ऑफ इंडिया'। 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में सफ़ह 8 पर हर रोज़ किसी का क़ौल नक़ल किया जाता है। इसकी इशाअत 4 मार्च (1986) को विलियम लॉ (William Law) का यह क़ौल नक़ल किया गया था, बुराई का आग़ाज़ हमेशा घमंड से होता है और उसका ख़ात्मा तवाज़ो से।

Evil can have no beginning, but from pride, nor any end but from humility.

इसको पढ़ते हुए मुझे ख़याल आया कि इस्लाम (दुसरे अल्फाज़ में, सच्चा मज़हब) आफ़ाक़ी सदाक़तों का ही आसमानी ज़बान में इज़्हार है। जो आदमी एक को जानता हो, उसके लिए दूसरे का समझना आसान हो जाएगा। मसलन विलियम लॉ ने अपने मज़्कूरा मक़ूला में जो बात नफ़्सियात की ज़बान में कही है, वही हदीस में मज़हबी ज़बान में इस तरह बयान की गई है—

لَا يَدْخُلُ الْجَنَّةَ مَنْ كَانَ فِي قَلْبِهِ
مِثْقَالُ حَبَّةٍ مِنْ خَرْدَلٍ مِنْ كِبْرٍ

"वह शख़्स जन्नत में नहीं जाएगा, जिसके दिल में राई के बराबर भी तकब्बुर हो।" (मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 4,310)

यह एक हक़ीक़त है कि फ़ख़्र व ग़ुरूर सबसे बड़ी बुराई है और इनकिसारी और तवाज़ो सबसे बड़ी नेकी। इसी से तमाम दूसरी चीज़ें पैदा होती हैं। दुनिया की तरक़्क़ी और आख़िरत की नजात दोनों का इनहिसार इसी पर है। यहाँ मैं इज़ाफ़ा करूँगा कि ग़ुरूर या तवाज़ो का सही पता आम हालात में नहीं चलता। इसका सही पता उस वक़्त चलता है, जबकि आदमी के साथ ग़ैर-मामूली हालात पेश आएँ। जब आदमी की अना पर चोट पड़े, उस वक़्त मालूम होता है कि वह मुतकब्बिर था या नहीं और जब हक़ की ख़ातिर दूसरे के आगे झुकने की ज़रूरत पेश आए, उस वक़्त अंदाज़ा होगा कि आदमी मुतवाज़े था या वह तवाज़ो का झूठा लबादा ओढ़े हुए था।

6 मार्च, 1986

मेरी लड़की फ़रीदा ख़ानम आज जामिया मिलिया इस्लामिया की लाइब्रेरी में गई थी। वापस आकर उसने बताया कि मैं लाइब्रेरी के

रीडिंग रूम में बैठकर कुछ पढ़ रही थी, मगर पढ़ना मुश्किल हो गया। मैं पढ़ती जाती थी, मगर ऐसा मालूम होता था, जैसे कुछ समझ में नहीं आ रहा है। इसकी वजह यह थी कि क़रीब की मेज़ पर एक लड़की चंद लड़कों के साथ बैठी हुई थी। वे बुलंद आवाज़ में बातें कर रहे थे। ख़ास तौर पर लड़की का यह हाल था कि मुसलसल ज़ोर-ज़ोर से बोल रही थी और क़हक़हे लगा रही थी। उसकी वजह से रीडिंग रूम में सुकून का माहौल बिलकुल ख़त्म हो गया था।

यह वाक़या सुनकर मुझे वह बात याद आई, जो एक सय्याह (tourist) ने लिखी है। उसने लिखा है कि मैं अमरीका गया। वहाँ एक लाइब्रेरी में भी गया और उसके रीडिंग रूम में कुछ देर बैठा। वहाँ रीडिंग रूम में नौजवान लड़कियाँ आती-जाती थीं, मगर वे हद दर्जा मुहतात थीं। वे चलने में इसका भी लिहाज़ करती थीं कि उनके कपड़ों की सरसराहाट से ख़लल न हो। इसी तरह जो लड़के और लड़कियाँ मेज़ों पर झुके हुए मुताला कर रहे थे, वे मुतलक़ कोई गुफ़्तगू नहीं करते थे, हत्ता कि जब उन्हें अपनी ज़ेर-ए-मुताला किताब का वर्क़ उलटना होता था, तो उसे भी निहायत आहिस्तगी से उलटते थे, ताकि काग़ज़ की खड़खड़ाहट न पैदा हो। रीडिंग रूम का हर शख़्स हद दर्जा इसका ख़याल कर रहा था कि उसका कोई फ़ेल दूसरे लोगों के लिए ख़लल-अंदाज़ी का बाइस न हो।

कितना फ़र्क़ है एक इंसान में और दूसरे इंसान में। कितना फ़र्क़ है एक मुआशरे में और दूसरे मुआशरे में।

7 मार्च 1986

क़ुरआन मजीद में है—

وَلَوْ كُنْتُ اَعْلَمُ الْغَيْبَ لَاسْتَكْثَرْتُ مِنَ الْخَيْرِ

"और अगर मैं ग़ैब को जानता तो मैं बहुत-से फ़ायदे अपने लिए हासिल कर लेता।" (7:188)

ये बहुत बा-मअनी अल्फ़ाज़ हैं। यह एक हक़ीक़त है कि इस दुनिया के फ़वाइद का बहुत गहरा ताल्लुक़ ग़ैब से है। अकसर नापसंदीदा हालात सिर्फ़ इसलिए पेश आते हैं कि आदमी पेशगी तौर पर उनका अंदाज़ा न कर सका था।

बाज़ औक़ात आदमी उममीद के ख़िलाफ़ अचानक इंतिहाई शदीद हालात में घिर जाता है। वह उससे इतना ज़्यादा परेशान होता है कि ऐसा मालूम होता है कि वह हौसला खो देगा, मगर तजुर्बा बताता है कि ना-ख़ुशगवार सूरतेहाल अकसर उससे बहुत कम ना-ख़ुशगवार होती है, जितना आदमी उसके बारे में समझ लेता है।

आदमी जब किसी मुसीबत में गिरफ़्तार हो जाता है, तो परेशानी में वह समझ लेता है कि वह एक भयानक मुस्तक़बिल की तरफ़ बढ़ रहा है, हत्ता कि बाज़ लोग आने वाले क़यासी ख़तरात से घबराकर ख़ुदकुशी कर लेते हैं या कम-अज़-कम अपनी सेहत बरबाद कर लेते हैं, मगर मेरा तजुर्बा यह है कि इस तरह के मौक़े पर उमूमन ऐसा होता है कि मुस्तक़बिल उससे कम ख़तरनाक निकलता है, जैसा कि आदमी ने मुतास्सिर ज़ेहन के तहत उसे समझ लिया था। जबकि बाज़ औक़ात ऐसा भी होता है कि मुश्किल में एक आसानी निकल आती है। खोना अपने अंजाम के एतिबार से पाना बन जाता है।

8 मार्च 1986

आज मेरी किताब 'पैग़ंबर-ए-इंक़लाब' का अंग्रेज़ी तर्जुमा पहली बार छपकर आया। उसका नाम है—

Mohammad: The Prophet of Revolution (Presently available as The Life of Muhammad)

मैंने उसे देखा तो अल्लाह का शुक्र अदा किया। यह एक हक़ीक़त है कि यह सिर्फ़ अल्लाह का ख़ास फ़ज़्ल है कि इस्लामी मर्कज़ का

काम इस तरह चल रहा है और आगे बढ़ रहा है, वरना मेरे अपने बस में तो कुछ भी ना था।

ग़ालिबन 1970 की बात है। मुझे यह ख़याल आया कि मैं अपनी बाज़ किताबों का अंग्रेज़ी तर्जुमा शाए करूँ। इस सिलसिले में मुख़्तलिफ़ मुतर्जिमीन से राब्ता किया, मगर कोई मुझे पसंद न आ सका। आख़िरकार मालूम हुआ कि उर्दू से अंग्रेज़ी ज़बान में तर्जुमा करने के लिए सबसे बेहतर शख़्स डॉक्टर आसिफ़ क़िदवई हैं। वे मौलाना अली मियाँ और दूसरे हज़रात की दीनी किताबों का तर्जुमा कर रहे थे। इस तरह वे इस मैदान का ख़ुसूसी तजुर्बा रखते थे। मैंने उन्हें ख़त लिखा। उनका चंद सुतूर का जवाब आया, जिसका ख़ुलासा यह था कि मेरे पास तर्जुमे के लिए इतने काम जमा है कि अगर मैं मज़ीद 15 साल ज़िंदा रहूँ, तो सिर्फ़ मौजूदा किताबों के तर्जुमों को मुकम्मल कर पाऊँगा, जबकि मज़ीद किताबों की आमद बदस्तूर जारी है।

बज़ाहिर ऐसा महसूस हुआ कि मुझे यह ख़ुशक़िस्मती कभी हासिल न होगी कि मेरी कोई किताब अंग्रेज़ी में उम्दा ज़बान में शाए हो, मगर उसके बाद हालात में तब्दीली हुई और अल्लाह तआला ने अंग्रेज़ी के लिए ऐसे आला इंतज़ामात फ़राहम कर दिए कि यक़ीन के साथ यह कहा जा सकता है कि 'पैग़ंबर-ए-इंक़लाब' जैसी किताब उम्दा अंग्रेज़ी ज़बान में तर्जुमा होकर छपी है, वैसी उम्दा किताब अंग्रेज़ी ज़बान में अभी तक किसी भी इस्लामी इदारे की कोई किताब शाए न हो सकी। अल्हम्दुलिल्लाह अला ज़ालिक!

9 मार्च, 1986

आज हिंदुस्तान टाइम्स की संडे मैगज़ीन में एक किताब पर तब्सिरा हुआ है—

The Viceroys of India by Mark Bence-Jones, pp. 343, 1982

यह किताब हिंदुस्तान के ब्रिटिश राज का तफ़्सीली रिकॉर्ड है। हिंदुस्तान में ब्रिटिश राज 175 साल तक रहा। इस मुद्दत में कुल 29 गवर्नर जनरल (वाइसरॉय) मुक़र्रर हुए। पहले ब्रिटिश गवर्नर जनरल वॉरेन हेस्टिंग्स (Warren Hastings, 1732-1818) थे, जो 1774 में कलकत्ता आए और आख़िरी ब्रिटिश वाइसरॉय लूईस माउंटबेटन (Louis Mountbatten, 1900-1979) थे, जो जून, 1948 में शानदार विदाई पार्टी के बाद दिल्ली से वापस होकर इंग्लिस्तान गए।

अंग्रेज़ों ने एक तरफ़ क़ौमी शऊर का ज़बरदस्त सबूत दिया। अपने मर्कज़ से ग़ैर-मामूली दूरी की बिना पर हर वाइसरॉय के लिए यह मुमकिन था कि वह बग़ावत करके हिंदुस्तान में अपनी आज़ाद हुकूमत क़ायम कर ले, मगर 29 वाइसरॉय में से किसी ने भी इस क़िस्म का बाग़ियाना मंसूबा नहीं बनाया, मगर यही लोग जो आपस में लड़ने को हद दर्जा ग़लत समझते थे, उन्होंने हिंदुस्तान में अपनी हुकूमत को मुस्तहकम करने का जो सबसे बड़ा राज़ दरयाफ़्त किया, वह यह था—लड़ाओ और हुकूमत करो ('Divide and Rule)

लॉर्ड डफरिन (Lord Dufferin, 1826-1902) ने 1885 में हिंदू-मुस्लिम झगड़े शुरू करवाए। इसके बाद वे बढ़ते ही रहे। अंग्रेज़ी हुकूमत 1947 में ख़त्म हो गई, मगर हिंदू-मुस्लिम झगड़े आज भी ख़त्म होते हुए नज़र नहीं आ रहे हैं। शायद हिमालय की सरज़मीन फ़िरक़ावाराना झगड़ों के लिए बहुत ज़रखेज है।

10 मार्च, 1986

तक़रीबन रोज़ाना मेरी नींद फ़ज्र से पहले खुल जाती है। अभी मैं बिस्तर ही पर होता हूँ कि दिल से दुआ के कलिमात निकलने लगते हैं और यह बिलकुल बेसाख़्ता तौर पर होता है। यह गोया क़ुरआन के अल्फ़ाज़''

(3:191) وَعَلٰى جُنُوْبِهِمْ का एक तजुर्बा होता है और यह रोज़ाना मुझ पर गुज़रता है यानी और वे अपने पहलुओं पर लेटे हुए अल्लाह को याद करते हैं।

आज फ़ज्र से पहले नींद खुली। मैं अभी बिस्तर पर लेटा हुआ था। कमरे में मैं बिलकुल तन्हा था और कमरा में अँधेरा था, मगर दिल से मुसलसल दुआएँ निकलने लगीं— बिलकुल वैसे ही, जैसे किसी माद्दे से उसकी फ़ितरी ख़ासियत अपने आप ज़ाहिर हो। ख़ुदाया! मुझे बख़्श दे, ख़ुदाया! मुझ पर रहम फ़रमा, ख़ुदाया! तू दुनिया व आख़िरत में मेरा मददगार बन जा।

मैं इन दुआओं में मशग़ूल था कि अचानक मुझे ख़याल आया कि दुआ कायनात का एक अनोखी निशानी है। जिस तरह माद्दे से एक ख़ासियत का ज़ाहिर होना उस माद्दे के अंदर एक अचूक ख़ासियत की मौजूदगी का सबूत होता है, उसी तरह इंसान के अंदर दुआ का निकलना ख़ुदा की मौजूदगी का क़तई और यक़ीनी सबूत है।

दुआ क्या है? दुआ एक हस्ती को देखे बग़ैर पुकारना है। एक हस्ती जो आस-पास कहीं नज़र न आ रही हो, उससे इस तरह हम-कलाम होना, जैसे कि वह हमारे बिलकुल क़रीब मौजूद है। इस तरह इंसान किसी और को नहीं पुकारता— न अपने दोस्तों को, न किसी हुक्मरान को, न सूरज और चाँद को। किसी की ग़ैर-मौजूदगी में उसे पुकारना और उससे हम-कलाम होना ख़ास तौर सिर्फ़ ख़ुदा के लिए होता है, यहाँ तक कि मुशरिक और ख़ुदा का इंकार करने वाले भी नाज़ुक वक़्तों में अपनी काल्पिनिक हस्तियों को नहीं पुकारते। ऐसे मौक़े पर उनके दिल से भी जब पुकार निकलती है, तो ख़ुदा ही के लिए है।

यह इस बात का नफ़्सियाती सबूत है कि यहाँ एक अज़ीम हस्ती है, जो सुनती और जानती है और जिसे हर क़िस्म का इख़्तियार हासिल है।

11 मार्च, 1986

अलीगढ़ से एक नौजवान आए। वे मुस्लिम यूनीवर्सिटी में इंजीनियरिंग के फ़ाइनल ईयर में हैं। गुफ़्तगू के दौरान मैंने कहा कि अलीगढ़ के मुसलमान तलबा अपनी तहरीक हमेशा इस्लाम के नाम पर चलाते हैं। हालाँकि इस्लाम से इसका कोई ताल्लुक़ नहीं होता। उन्होंने अलीगढ़ के मुस्लिम तलबा की हिमायत की और कहा कि आपकी यह बात दुरुस्त नहीं। हमारे यहाँ के तलबा में ज़बरदस्त इस्लामी जज़्बा है। इस मुल्क में वे इस्लामी ज़िंदगी का निशान हैं वग़ैरह-वग़ैरह।

मैंने कहा कि अलीगढ़ के मुस्लिम तलबा इस्लाम का नाम तो ज़रूर लेते हैं, मगर उनकी सरगर्मियों का इस्लाम से कोई ताल्लुक़ नहीं। उन्होंने कहा कि इसकी मिसाल दीजिए। मैंने कहा कि हाँ, मैं आपको एक मुतय्यन मिसाल देता हूँ।

इसके बाद मैंने कहा कि प्रोफ़ेसर इरफ़ान हबीब (पैदाइश : 1931) के मसले को लीजिए, जिनके ख़िलाफ़ मुस्लिम लड़कों ने इतने हंगामे किए कि यूनीवर्सिटी बंद कर देनी पड़ी। इसकी तफ़्सील यह है कि एक अख़बार 'इंडियन एक्सप्रेस' 3 जनवरी (1981) में प्रोफ़ेसर इरफ़ान हबीब का एक इंटरव्यू छपा। इस इंटरव्यू पर अलीगढ़ के मुस्लिम तलबा को सख़्त एतराज़ हुआ। मैं पूरे एतिमाद के साथ यह कहता हूँ कि इस इंटरव्यू में ख़ालिस हक़ीक़त के एतिबार से कोई क़ाबिल-ए-एतराज़ बात न थी। ताहम इससे क़त-ए-नज़र इस इंटरव्यू के ख़िलाफ़ मुस्लिम तलबा ने जो कुछ किया, वह सरासर इस्लामी तालीमात के ख़िलाफ़ था, मसलन— मुस्लिम तलबा ने प्रोफ़ेसर इरफ़ान हबीब पर लाठी से हमला किया। अगरचे इत्तिफ़ाक़ी तौर पर वे बच गए।

अब मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि क़ुरआन में यह तालीम दी गई है कि अगर तुम बदला लेना चाहो, तो उसके बराबर बदला हो, जो तुम्हारे साथ किया गया है। इस क़ुरआनी हुक्म के

मुताबिक़ इस्लामी तरीक़ा यह था कि आप प्रोफ़ेसर इरफ़ान हबीब के मज़मून के जवाब में ख़ुद भी एक मज़मून शाए कर देते, मगर क़लम का जवाब डंडे से देना इस क़ुरआनी हुक्म के सरासर ख़िलाफ़ है। फिर ऐसी तहरीक को आप किस तरह इस्लामी तहरीक कह सकते हैं। इसके जवाब में वे ख़ामोश हो गए।

12 मार्च, 1986

अख़बार 'टाइम्स ऑफ इंडिया' का एक सप्लिमेंट 'Woman' के नाम से निकला। यह 8 मार्च, 1986 के अख़बार के साथ मुझे मिला था, मगर फ़ौरन मैं इसे न पढ़ सका था। अब आज उसे देखा। इसमें एक तवील मज़मून मधु किश्वर (पैदाइश : 1951) का है। ये एक हिंदू ख़ातून हैं, जो मानुशी (Manushi) नामी फ़ेमिनिज़्म मैगज़ीन की एडिटर हैं। इस मज़मून का उनवान है—

Another Look at the Shah Bano Controversy

मोहतरमा मधु किश्वर के बारे में मालूम हुआ कि वे काफ़ी आज़ाद ख़याल हैं, हत्ता कि जनाब तौक़ीर साहब के बयान के मुताबिक़ वे मैरिज के इंस्टीट्यूशन में यक़ीन नहीं रखतीं। उनके इस मज़मून में जो बात सबसे ज़्यादा उभरी हुई है, वह उनके अल्फ़ाज़ में औरत पर मर्द के ग़लबे के ख़िलाफ़ एहतिजाज है। इस मज़मून में गोया उन्होंने मर्द के ख़िलाफ़ अपना बुख़ार निकाला है। उनका एक जुमला यह है—

Through centuries, most men have used religion to legitimise their unjust domination of women in most parts of the world.

ग़ौर करने से मालूम होता है कि इस मामले में हर गिरोह एक ही मुक़ाम पर है। मधु किश्वर शाह बानो के मामले को आड़ बनाकर मर्द के ख़िलाफ़ अपना बुख़ार निकाल रही हैं। हिंदू अनासिर इस मामले को

लेकर मुसलमानों के ख़िलाफ़ अपना बुख़ार निकाल रहे हैं और मुस्लिम पर्सनल लॉ का तहफ़्फ़ुज़ करने वाले लोग शाह बानो केस को बहाना बनाकर हिंदुओं के ख़िलाफ़ अपना बुख़ार निकाल रहे हैं।

हर आदमी अपने दिल का बुख़ार निकालने में मसरूफ़ है। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि कोई शख़्स एक के ख़िलाफ़ अपना बुख़ार निकाल रहा है और कोई शख़्स दूसरे के ख़िलाफ़।

13 मार्च, 1986

अहमद उल्लाह बख़्तयारी (रायचोटी) एक नौजवान हैं। वे आज मिलने के लिए आए। वे रियाद (सऊदी अरब) की जामिया अल-इमाम से फ़ारिग़ हैं। वहाँ उन्होंने सात साल रहकर अरबी अदब की तकमील की है। उन्होंने बताया कि वहाँ उनके एक उस्ताद डॉक्टर मुहम्मद अली अल-हाशमी थे, जो कि डॉक्टर ताहा हुसैन के शागिर्द हैं। डॉक्टर मुहम्मद अली अल-हाशमी ने अदीब की तारीफ़ इन अल्फ़ाज़ में की है: अदीब वह है, जो अल्फ़ाज़ के साथ खेले)। उसका अल्फ़ाज़ पर इतना क़ाबू हो कि जिस लफ़्ज़ को जहाँ चाहे रखे और जहाँ से चाहे हटाए।

मैंने कहा कि अदब की यह तारीफ़ अदब के क़दीम तसव्वुर पर मबनी है। अदब का एक तसव्वुर वह है, जिसकी नुमाइंदगी मुक़ामात हरीरी जैसी किताबें करती हैं। उनमें सारा ज़ोर अल्फ़ाज़ पर होता है। इसके मुताबिक़ अदब का कमाल यह है कि वह शायराना जुमले लिख सके। पहला जुमला जिस लफ़्ज़ पर ख़त्म हुआ है, दूसरे जुमले के ख़ात्मे के लिए भी उसे वैसा ही लफ़्ज़ मिल जाए, मसलन— क़दीम अरब के मशहूर स्पीकर क़ुस बिन सआदह ऐयादी की तक़रीर का एक जुमला यह है—

طَحَنَهُمُ الثَّرَى بِكَلْكَلِهِ، وَمَزَّقَهُمْ بِتَطَاوُلِهِ

(दलाईल उन-नुबूवत अल-बैहक़ी, जिल्द 2, सफ़ा 109)

क़दीम ज़माने में शायरी का ज़ोर था, इसलिए क़दीम ज़माने में अल्फ़ाज़ की लय पर ज़ोर दिया जाता था। मौजूदा ज़माने में साइंस का दौर है, इसलिए अब अल्फ़ाज़ की मअनी पर ज़ोर दिया जाता है। क़दीम तसव्वुर के मुताबिक़ ज़ख़ीरा-ए-अल्फ़ाज़ की ज़्यादा अहमियत थी, मगर अब मअना को समझने की ज़्यादा अहमियत है। क़दीम तसव्वुर अदब के मुताबिक़ आदमी के पास अल्फ़ाज़ का ढेर जितना ज़्यादा हो, उतना ही ज़्यादा वह मौज़ू जुमले बना सकता था, मगर जदीद तसव्वुर-ए-अदब के मुताबिक़ जिस शख़्स का समझ-बूझ जितना ज़्यादा बढ़ा हुआ हो, उतना ही ज़्यादा अल्फ़ाज़ (appropriate words) उसकी ज़बान व कलम से ज़ाहिर होंगे।

14 मार्च, 1986

मैं तज़्कीर-उल-क़ुरआन (सूरह अल-अनक़बूत) करेक्शन के लिए देख रहा था। दरमियान में इसके एक सफ़्हा की नक़्ल लेने की ज़रूरत पेश आई। हमारे दफ़्तर में फोटोकॉपी मशीन है। मैंने इंटरकॉम (intercom) पर नीचे बताया। नीचे के दफ़्तर से एक आदमी आया। उसे मैंने मज़्कूरा सफ़्हा दिया। वह सफ़्हा को ले गया और उसी वक़्त असल और कॉपी लाकर मुझे दे दी।

मज़्कूरा सफ़्हा की नक़ल एक मिनट बाद मेरे सामने मौजूद थी। ऐन वही सफ़्हा बिलकुल साफ़ और सही शक्ल में छपा हुआ था। उसे देखकर मुझ पर अजीब तास्सुर हुआ। मैंने कहा कि क़दीम ज़माने में किसी सफ़्हा की ऐसी एक नक़्ल हासिल करना किस क़दर दुश्वार और कितनी देर का काम था। आज यह हाल है कि आदमी उसे एक मिनट में हासिल कर लेता है। यह बिला शुब्हा ख़ुदा का मोजिज़ा है। इन वाक़यात की मौजूदगी में जो लोग मोजिज़ा तलब करें, वे अंधे हैं। अगर वे आँख वाले होते, तो यक़ीनन उन्हें वाक़यात में वह मोजिज़ा-ए ख़ुदावंदी को देख लेते।

फिर मैंने सोचा कि नुज़ूल-ए-क़ुरआन से पहले ख़ुदा की तरफ़ से बराबर मोजिज़े आते रहे, मगर नुज़ूल-ए-क़ुरआन के बाद मोजिज़ात की आमद बंद हो गई। इसकी वजह ग़ालिबन नुज़ूल-ए-क़ुरआन के बाद दौर-ए-साइंस का आना और इसके ज़रिये क़ुदरत के बेशुमार अजाबात ज़ुहूर में आना है। क़ुरआन के बाद साइंस का ज़माना आ रहा था, इसलिए अल्लाह तआला ने क़ुरआन के बाद मोजिज़ात को भेजना बंद कर दिया।

15 मार्च, 1986

जमात-ए-इस्लामी के दो साहिबान मिलने के लिए आए। गुफ़्तगू के दौरान मैंने कहा कि मौलाना अबुल आला मौदूदी ने तक़सीम-ए-हिंद के वक़्त मद्रास में एक तक़रीर की थी, जिसमें उन्होंने हिंदुस्तान में तहरीक-ए-इस्लामी का मंसूबा बताया था। इसमें उन्होंने कहा था कि आज़ाद हिंदुस्तान में सबसे पहला काम यह होगा कि हिंदुओं और मुसलमानों के दरमियान क़ौमी कश्मकश को ख़त्म किया जाए, उसके बग़ैर हिंदुस्तान में इस्लामी दावत का काम नहीं किया जा सकता।

मैंने कहा कि यह एक निहायत अहम और बुनियादी बात थी, मगर जमात-ए-इस्लामी हिंद इस पर न चल सकी। जमात-ए-इस्लामी हिंद अगरचे इस्लामी दावत का नाम लेती है, मगर इसके साथ ही वह मुसलमानों की उन नामनिहाद मिल्ली सरगर्मियों में भी शरीक है, जो हिंदुओं और मुसलमानों के दरमियान क़ौमी कश्मकश पैदा करने वाली हैं। मौलाना मौदूदी की रहनुमाई अगरचे बज़ात-ए-ख़ुद सही थी, मगर वे पूरी बात न कह सके। मामले के एक हिस्से तक उनकी नज़र पहुँची, मगर मामले का दूसरा हिस्सा उनकी निगाहों से ओझल रह गया।

हिंदुस्तान में क़ौमी कश्मकश का ख़त्म होना बिला शुब्हा इंतिहाई ज़रूरी है, मगर सवाल यह है कि उसे कौन ख़त्म करे। हमारे तमाम मुस्लिम क़ाइदीन क़ौमी कश्मकश के ख़ात्मे का नाम लेते हैं, मगर वे चाहते हैं कि दोनों क़ौमें उसे ख़त्म करें और यह यक़ीनी तौर पर नामुमकिन है। इस तरह की चीज़ें जब भी ख़त्म होती हैं, यकतरफ़ा तौर पर ख़त्म होती हैं। मुसलमान अगर यकतरफ़ा तौर पर अपने तमाम झगड़े ख़त्म कर दें, तो क़ौमी कश्मकश भी ख़त्म हो जाएगी और इस्लामी दावत के लिए मुवाफ़िक़ माहौल पैदा हो जाएगा, लेकिन अगर मुसलमान यकतरफ़ा तौर पर इस कश्मकश को ख़त्म न करें तो वह कभी ख़त्म होने वाली नहीं और न ही यह मुमकिन है कि इस मुल्क में कभी इस्लामी दावत के लिए वसीअ मुवाफ़िक़ मैदान पैदा हो।

17 मार्च, 1986

प्रोफ़ेसर कार्ल सगन (Carl Sagan, birth: 1934) अमरीका के एक बड़े मशहूर अंतरिक्ष वैज्ञानिक हैं। वे इस वक़्त न्यूयॉर्क की कॉर्नेल यूनीवर्सिटी में ख़लाई मुताला के उस्ताद हैं। कार्ल सगन का एक मज़मून 15 मार्च, 1986 को 'हिंदुस्तान टाइम्स' में शाए हुआ है, जिसका उनवान है—

Are there other planetary systems?

इस मज़मून में उन्होंने दिखाया है कि कायनात की सारी वुसअतों के बावजूद अभी तक इसमें हमारे शम्सी निज़ाम (solar system) के सिवा किसी और शम्सी निज़ाम का पता नहीं चल सका है। ज़बरदस्त ज़मीनी और ख़लाई मुशाहदात के बावजूद अभी तक साइंस-दाँ यक़ीन के साथ नहीं कह सकते कि हमारी ज़मीन जैसा कोई ग्रह या शम्सी निज़ाम जैसा कोई निज़ाम वसीअ कायनात में मौजूद है भी या नहीं। ज़मीन जैसा सय्यारा (Earth like Planet) हमारी कायनात का इंतिहाई नादिर वाक़या है। वे लिखते हैं—

If other planetary systems are absent, we might have to reconcile ourself to a long cosmic loneliness.

अगर दूसरे सय्यारातीं निज़ाम (planetary systems) मौजूद नहीं हैं, तो हमें इस बात को मान लेना होगा कि हम कायनात में तन्हा हैं और हमें एक लंबी कायनाती तन्हाई (cosmic loneliness) का सामना करना पड़ेगा।

ज़मीन या हमारा शम्सी निज़ाम (solar system) कायनात में एक ख़ास और नायाब वाक़या (exception) है, जो इर्तिक़ाई अमल (evolutionary process) के ख़िलाफ़ है। कोई भी ऐसा ख़ास वाक़या अकसर एक सोची-समझी तख़्लीक़ (creation) का नतीजा होता है, न कि इत्तिफ़ाक़ी इर्तिक़ाई अमल का। इर्तिक़ाई अमल हमेशा एक जैसी चीज़ों की पैदाइश चाहता है। इस तरह का मानीख़ेज़ (meaningful) और ख़ास इस्तिस्ना (exception), जैसे कि हमारी ज़मीन, अंधे इर्तिक़ाई अमल से मुमकिन नहीं।

18 मार्च, 1986

मौलाना मुहम्मद रफ़ीक़ कानपुरी (एम०ए०, एल०एल०बी०) मिलने के लिए आए। वे आजकल सऊदी अरब में रहते हैं। वे अजीबो-गरीब सलाहियतों के आदमी हैं। वे कई ज़बानें जानते हैं और बयकवक़्त रवानी के साथ बोल सकते हैं।

वे अपनी ज़िंदगी के मुख़्तलिफ़ वाक़यात सुनाते रहे। कभी अपना कोई वाक़या सुनाते हुए अपनी कोई गुफ़्तगू अंग्रेज़ी में दोहराने लगे। कभी किसी दूसरे वाक़या का ज़िक्र हुआ, जिसमें उन्होंने अरबी में कलाम किया था और वे उसे अरबी में नक़ल करने लगे। फिर उन्होंने अपनी एक हिंदी तक़रीर का क़िस्सा बताया और इसके बाद वे बे-तकल्लुफ़ हिंदी में बोलने लगे।

इसी तरह वे कभी उर्दू में, कभी अंग्रेज़ी में, कभी अरबी में और कभी हिंदी में बोलते रहे। मैंने सोचा कि इंसान को भी अल्लाह तआला ने कैसी अजीब सलाहियत दी है। रेडियो पर ऐसा होता है कि आदमी हिंदी प्रसारण सुन रहा था और फिर स्विच घुमाकर अंग्रेज़ी प्रसारण सुनने लगा। दोबारा स्विच घुमाया, तो अरबी नशरियात सुनाई देने लगीं। इंसानी दिमाग़ भी गोया इसी क़िस्म का ज़्यादा आला (superior) रेडियो टेप है। वह एक ज़बान से दूसरी ज़बान, दूसरी से तीसरी ज़बान और तीसरी ज़बान से चौथी ज़बान की तरफ़ मुंतक़िल होता रहता है, बग़ैर इसके कि उसमें कोई ताख़ीर हुई हो।

रेडियो तो बोली हुई आवाज़ को दोहराता है, मगर इंसान का दिमाग़ ख़ुद अपने शऊर के तहत मुख़्तलिफ़ ज़बानों में कलाम की तख़्लीक़ करता है और उसे ज़बान के ज़रिये सामने लाता है। कैसा अजीब है यह दिमाग़ और कैसा अजीब है वह ख़ालिक़, जिसने इस दिमाग़ को ख़ल्क़ किया।

19 मार्च, 1986

19 मार्च, 1986 को मैंने इंडियन एयर लाइंस के ज़रिये दिल्ली से पुणे का सफ़र किया। मेरा टिकट नंबर 0582/8736912 था। यह टिकट दिल्ली के दफ़्तर से 2128 रुपये में लिया गया था, मगर उसके चंद दिन बाद इंडियन एयर लाइंस ने ऐलान किया कि 18 मार्च से उसने अपनी तमाम हवाई यात्रा के किराए बढ़ा दिए हैं। यह टिकट 1 मार्च को ख़रीदा गया था, मगर सफ़र चूँकि 19 मार्च को हुआ, इसलिए हमें इज़ाफ़ा-शुदा किराया मज़ीद अदा करना पड़ा।

मैंने सोचा कि अगर मैं इंडियन एयर लाइंस से शिकायत करूँ कि आपने टिकट की ख़रीदारी के वक़्त मज़ीद रक़म क्यों न ली, तो यह एक अहमक़ाना बहस होगी, क्योंकि किराया सफ़र की क़ीमत है। इसलिए

किराये का एतिबार वक़्त-ए-सफ़र के लिहाज़ से होगा, न कि वक़्त ख़रीदारी के लिहाज़ से।

1 मार्च को इस टिकट के ज़रिये सफ़र करने का मिजाज़ था, मगर 19 मार्च को इस टिकट के ज़रिये सफ़र करने का मिजाज़ न रहा, इल्ला यह कि मैं इज़ाफ़ा-शुदा रक़म अदा करूँ। अकसर लोग इस हक़ीक़त को नहीं जानते, चुनाँचे वे अपनी ज़िंदगी के मामलात में बार-बार ग़लतियाँ करते हैं। वे पुराने टिकट पर नया सफ़र करना चाहते हैं और जब उन्हें सफ़र की इजाज़त नहीं मिलती, तो वे दूसरों की शिकायत करते हैं कि उनके साथ ज़ुल्म किया जा रहा है। हालाँकि यह ज़ुल्म नहीं, यह ज़िंदगी का एक उसूल है। जो लोग इसे ज़ुल्म कहें, वे सिर्फ़ यह ऐलान कर रहे हैं कि वे ज़िंदगी की हक़ीक़त को नहीं जान सके।

20 मार्च, 1986

आज 20 मार्च, 1986 को मुझे हस्बे-प्रोग्राम पुणे में दर्स-ए-क़ुरआन देना था। कई रोज़ से मैं इस सोच में था कि क़ुरआन के किस हिस्से का दर्स दिया जाए। पिछली रात को दिल्ली में ख़्वाब देखा कि बहुत-से लोग किसी मुक़ाम पर जमा हैं और मैं उनके दरमियान क़ुरआन का दर्स दे रहा हूँ। यह दर्स सूरह आले-इमरान की आख़िरी आयात (190-200) का था।

यह गोया ग़ैबी इशारे के तहत इस बात का ताय्युन था कि क़ुरआन के किस हिस्से का दर्स दिया जाए। चुनाँचे मैंने मज़्कूरा रुकु को अरबी तफ़्सीर में देखना शुरू किया, तो मालूम हुआ कि इसके तहत सहाबा व ताबईन के बड़े क़ीमती अक़्वाल और वाक़यात मौजूद हैं। चुनाँचे मैंने उन्हें नोट कर लिया और उनके मुताबिक़ दर्स की तैयारी की।

जदीद नज़रिया यह है कि इस क़िस्म का ख़्वाब ला-शऊरी का करिश्मा होता है, मगर ईमानी नुक़्ता-ए-नज़र से देखा जाए तो यह ख़ुदाई

बशारत है। मेरे इस तरह ख़्वाब के ज़रिये ना सिर्फ़ दर्स के लिए क़ुरान की आयतों को मुंताख़ब करना आसान हो गया, बल्कि ख़ुद मेरे लिए मारिफ़त का नया दरवाज़ा खुला। ख़ास तौर पर 'तफ़्सीर इब्न-ए-कसीर' में इतने क़ीमती अक़्वाल मिले कि उन्हें पढ़ते हुए आँखें तर हो गईं।

21 मार्च, 1986

21 मार्च को मैं पुणे में था। एक मजलिस में कुछ लोग बैठे हुए थे। गुफ़्तगू के दौरान एक साहब, जिनका नाम आफ़ताब अहमद था, ने मेरे बारे में अपनी मालूमात का इज़्हार करते हुए कहा—

"मौलाना वहीदुद्दीन साहब वह शख़्सियत हैं, जिन्हें आज सारी दुनिया जानती है। वे एक सफ़र के दौरान अफ़्रीक़ा के एक हवाई अड्डे पर प्लेन के इंतज़ार में बैठे हुए थे। उस हवाई अड्डा से लीबिया के सदर मुअम्मर क़ज़ाफ़ी का गुज़र हुआ। उन्हें मालूम हुआ कि मौलाना यहाँ हवाई अड्डा पर हैं, तो हवाई जहाज़ से उतरकर मौलाना के पास आए और अक़ीदतमंदी के साथ मुलाक़ात की।"

जनाब आफ़ताब साहब ने मज़्कूरा बात ऐन मेरी मौजूदगी में कही। उन्हें अपने इस बयान पर सद-फ़ीसद यक़ीन था। हालाँकि यह सरासर बे-बुनियाद वाक़या है। इस क़िस्म का कोई वाक़या मेरे साथ कभी पेश नहीं आया। इस बयान में कोई अदना सदाक़त भी नहीं है।

मेरे साथ इस तरह के दूसरे बहुत-से वाक़यात गुज़रे हैं, जिनसे मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि बुज़ुर्गों की बात, जो क़िस्से-कहानियाँ आम तौर पर मशहूर हैं या किताबों में दर्ज हैं, उनकी हक़ीक़त क्या है। यह वही बात है, जिस को किसी ने अपने फ़ारसी मक़ूला में इस तरह बयान किया है—

"पैरां नमी परिंद मरीदां मी परानंद'

यानी पीर नहीं उड़ते, बल्कि मुरीद उनको उड़ाते हैं। अक़ीदतमंद लोग अपनी साहिब-ए-अक़ीदत शख़्सियत के बारे में बतौर ख़ुद अफ़साने बना लेते हैं और उसे लोगों से बयान करने लगते हैं। ये अफ़साने बाद के ज़माने में मुक़द्दस होकर इस तरह मान लिए जाते हैं, जैसे कि वे वाक़यात हों।

22 मार्च, 1986

पुणे में एक साहब से मुलाक़ात हुई। वे अंग्रेज़ी तालीम-याफ़्ता हैं और साइंस से दिलचस्पी रखते हैं। उन्होंने कहा कि मैं क़ुरआनी तफ़्सीर के बारे में एक किताब लिखना चाहता हूँ। मेरी बहुत-सी तहक़ीक़ात हैं, जो मैंने क़ुरआन और साइंस के बारे में की हैं। मैं चाहता हूँ कि उन्हें क़लम-बंद करूँ।

मैंने पूछा कि कोई तहक़ीक़ बतौर मिसाल बताएँ। उन्होंने क़ुरआन की सूरह अल-हुमाज़ा की यह आयत पढ़ी كَلَّا لَيُنْبَذَنَّ فِي الْحُطَمَةِ (104:4)। इस आयत का लफ़्ज़ यह है— हरगिज़ नहीं, वह ज़रूर फेंका जाएगा, रौंदने वाली जगह में।

उन्होंने कहा कि लोग इस आयत को समझ नहीं सके। यहाँ 'हुतमा' से मुराद एटम है। 'वह हतम में फेंका जाएगा' का मतलब है— वह एटम में फेंक दिया जाएगा यानी एटमी भट्ठी में। चूँकि 'हतम' और 'एटम' में सौती मुशाबहत है, इसलिए उन्होंने यह समझ लिया कि हतम से मुराद एटम है।

उन्होंने बड़े जोश और यक़ीन के साथ अपनी यह तफ़्सीर बयान की और मैं यह सोचता रहा कि जोश और यक़ीन भी कैसी अजीब चीज़ है। वह ऐसी बातों पर भी पैदा हो सकता है, जिसकी सिरे से कोई बुनियाद ही न हो।

मौजूदा ज़माने में इस क़िस्म के बहुत-से नामनिहाद मुफ़स्सिरीन पैदा हो गए हैं, जो अपने गुमान के मुताबिक़ क़ुरआन की साइंसी तफ़्सीर कर रहे हैं। उनकी इसी क़िस्म की बे-मअनी बातों की वजह से दीनी तबक़े को साइंसी तशरीह के लफ़्ज़ से चिढ़ हो गई है। वे समझते हैं कि साइंसी तशरीह मज़्कूरा क़िस्म की बातों का नाम है। हालाँकि यह अपनी हक़ीक़त के एतिबार से जाहिलाना तशरीह है, न कि साइंसी तशरीह।

23 मार्च, 1986

आज एक साहब मुलाक़ात के लिए आए। वो जमात-ए-इस्लामी के रुक्न हैं और जमात के तस्नीफ़ और तालीफ़ (composition and compilation)के शोबे से वाबस्ता हैं। उन्होंने इस्लाम के मौज़ू पर कई किताबें लिखी हैं। गुफ़्तगू के दौरान मैंने उनसे कहा कि मौलाना अबुल आला मौदूदी ने मुसलमानों के मकसद को "हुकूमत-ए-इलाही" का क़याम बताया है, लेकिन ये बात किसी भी आयत या हदीस से बराह-ए-रास्त साबित नहीं होती।

मैंने कहा कि इसमें कोई शक नहीं कि आप लोगों ने इसके हक़ में बहुत सी दलीलें दी हैं, लेकिन वो सब क़यासी हैं। और इस मामले में क़यासी दलील क़ाबिल-ए-एतबार नहीं है।

फ़ुक़हा ने दलील के चार तरीक़े बताए हैं— इबारत-उन-नस (वाज़ेह अल्फ़ाज़), इशारत-उन-नस (इशारा), दलालत-उन-नस (मानी का इशारा), और इक्तिज़ा-उन-नस (ज़रूरी नतीजा)। लेकिन हक़ीक़त में ये सिर्फ़ दो हैं: एक बराह-ए-रास्त दलील और दूसरा क़यासी दलील।

दीनी उमूर को दो हिस्सों में तक़्सीम किया जा सकता है: कुल्लियात-ए-दीन (दीन के बुनियादी उसूल) और जुज़ियात-ए-दीन (दीन के ग़ैर बुनियादी उमूर)। क़यासी दलील या क़यासी इस्तिदलाल

सिर्फ़ जुज़ियात-ए-दीन में कारआमद है। लेकिन जहां तक कुल्लियात-ए-दीन का ताल्लुक़ है, वहां सिर्फ़ बराह-ए-रास्त दलील ही क़ाबिल-ए-एतबार है। जैसे "ख़ुदा एक है" जैसी बात को बराह-ए-रास्त दलील से साबित होना चाहिए। अगर ये क़यासी दलील से साबित हो तो ये साबित ही नहीं हुआ।

मैंने कहा कि आपकी तमाम दलीलें क़यासी हैं, लेकिन "हुकूमत-ए-इलाही" जैसे मामले में क़यासी दलील मुअतबर नहीं हो सकती। मिसाल के तौर पर, मौलाना मौदूदी ने 'तफ़हीम-उल-क़ुरआन' में 'अक़ीमुद्दीन' की आयत पर बहुत कुछ लिखा है, लेकिन वो सब क़यासी नौयत की दलीलें हैं। मैंने उनसे कहा कि अगर आप इस से इत्तेफ़ाक़ नहीं रखते तो मुझे कोई ऐसी किताब या मज़मून बताएं जिसमें इस मामले को बराह-ए-रास्त दलील से साबित किया गया हो, लेकिन वो कोई भी मिसाल देने से नाकाम रहे। हैरत की बात है कि इस इल्मी कमी के बावजूद लोगों का यक़ीन मुतज़लज़िल नहीं होता।

24 मार्च, 1986

मुंबई से शाए होने वाले मराठी अख़बार 'तरुण भारत' में शिवसेना के लीडर मिस्टर बाल ठाकरे का एक बयान शाए हुआ है। इसका उर्दू तर्जुमा पंद्रह रोज़ा 'हालात' (भिवंडी) नज़र से गुज़रा।

मिस्टर बाल ठाकरे ने कहा कि मुसलमान मुतल्लक़ा औरत के मामले में इस्लामी शरीयत के क़ानून का नफ़ाज़ चाहते हैं। हमारी राय है कि उन पर हर मामले में इस्लामी शरीयत नाफ़िज़ कर दी जाए। पाकिस्तान और अरब मुल्कों में जराइम के ऊपर इस्लामी सज़ाएँ दी जाती हैं। मिस्टर बाल ठाकरे ने मश्वरा दिया कि यही हिंदुस्तान में भी मुसलमानों के लिए किया जाए। उन्होंने कहा कि हुकूमत को चाहिए कि शरीयत के मुताबिक़ वह मुसलमान चोरों के हाथ काट दे, मुसलमान

ज़ानी को संगसार करे और मुसलमान शराबी को कोड़े मारे वग़ैरह-वग़ैरह। मुसलमानों के लिए इस क़िस्म के जराइम पर वही सज़ा मुक़र्रर की जाए, जो उनकी शरीयत में मुक़र्रर है।

मिस्टर बाल ठाकरे की यह बात तजवीज़ नहीं, बल्कि तंज़ है। इसका मतलब यह नहीं कि वे वाक़यतन यह चाहते हैं कि हिंदुस्तान में इस्लामी शरीयत नाफ़िज़ की जाए। इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि मुसलमान मुतल्लक़ा औरत को गुज़ारा न देने के लिए ज़बरदस्त मुतालबा कर रहे हैं और इसके लिए बहुत बड़े पैमाने पर मुत्तहिद हो गए हैं, लेकिन यही मुसलमान उस वक़्त भाग खड़े होंगे, जब यह कहा जाए कि आइंदा से मुस्लिम मुजरिमीन को शरीयत के मुताबिक़ कोड़ा मारा जाएगा और संगसार किया जाएगा और उनके हाथ काटे जाएँगे। मुसलमानों का मौजूदा मुत्तहदा मुतालबा सिर्फ़ इसलिए है कि ख़ुद उनके ऊपर उसकी ज़द नहीं पड़ रही है, लेकिन अगर उन्हें अपनी पीठ के लिए भी कोड़े का ख़तरा हो और हाथ कटने और संगसार किए जाने का अंदेशा हो, तो यह मुत्तहदा मुतालबा अचानक ख़त्म हो जाएगा।

कैसे अजीब हैं वह मुसलमान, जिन्होंने अपनी नादान सियासत से इस्लाम को दूसरों की नज़र में मज़हकाख़ेज़ बना दिया है।

26 मार्च, 1986

डॉक्टर एन०जे० ख़ान (पैदाइश : 1932) इंग्लैंड में मेडिकल प्रैक्टिस करते हैं। आज वे मुलाक़ात के लिए आए। उनसे बहुत-सी दिलचस्प और मुफ़ीद बातें हुईं। उन्होंने बताया कि उनके ख़ानदान में उनके वालिद साहब के ज़माने से ख़ानदानी इज्तिमा का निज़ाम क़ायम है। ख़ानदान के अफ़राद वक़्फ़ा-वक़्फ़ा से एक घरेलू इज्तिमे में शरीक होते हैं। इस इज्तिमे का सदर वह शख़्स होता है, जो उम्र में सबसे ज़्यादा हो।

उन्होंने बताया कि हमारे घर में कोई झगड़ा नहीं। हमारे यहाँ भी ख़ानदान के एक शख़्स और दूसरे शख़्स के दरमियान वक़्ती शिकायतें होती हैं, मगर वे बढ़ने से पहले ख़त्म हो जाती हैं, क्योंकि ख़ानदानी इज्तिमे में लोग अपनी हर बात को खुले तौर पर बयान करते हैं। इसके बाद इज्तिमे का सदर (घर का बड़ा) जो फ़ैसला करता है, उसे सब लोग बिला बहस मान लेते हैं।

मज़ीद सवालात के बाद उन्होंने बताया कि इस निज़ाम को कामयाबी के साथ चलाने का ख़ास राज़ है— रीज़न के सामने सर झुका देना और अपनी ग़लती को फ़ौरन मान लेना।

उन्होंने कहा कि मैं इसे सबसे बड़ा इंसानी कैरेक्टर समझता हूँ। मुझे डॉक्टर ख़ान साहब की यह बात बहुत पसंद आई। हक़ीक़त यह है कि अगर हर ख़ानदान में इस क़िस्म का निज़ाम क़ायम हो जाए, तो तमाम ख़ानदानी झगड़े अपने आप मिट जाएँगे।

डॉक्टर ख़ान साहब की शादी 1959 में हुई। उन्होंने कहा कि मेरे वालिद ने एक रोज़ 11 बजे रात को मुझे अपने कमरे में बुलाया। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारा निकाह करना चाहता हूँ। यह बताओ कि तुम घर का चिराग़ चाहते हो या शम्मा-ए-महफ़िल। उन्होंने जवाब दिया कि मैं शम्मा-ए-महफ़िल लेकर क्या करूँगा। मुझे तो घर का चिराग़ चाहिए। इसके बाद उनके वालिद साहब ने अपने इंतिख़ाब से एक ख़ातून के साथ उनका निकाह कर दिया। काश! यही स्पिरिट हमारे तमाम नौजवानों में पैदा हो जाए।

27 मार्च, 1986

आज दो साहिबान मिलने के लिए आए। दोनों वकील हैं और दीनी मिज़ाज रखते हैं। उन्होंने मौलाना अबुल हसन अली नदवी साहब की किताब 'अस्र-ए-हाज़िर में दीन की तफ़हीम-ओ-तशरीह' का ज़िक्र

किया। मैंने कहा कि यह किताब मौलाना मौदूदी के फ़िक्र की तरदीद में लिखी गई है, मगर अमलन वह इस फ़िक्र की तरदीद नहीं, बल्कि तस्दीक़ बन गई है। यह किताब एक मज़बूत केस की कमज़ोर वकालत है।

मैंने कहा कि इस वक़्त आलम-ए-इस्लाम में बुनियादी तौर पर दो क़िस्म के दीनी फ़िक्र पाए जाते हैं। एक, तब्लीग़ी जमात का दीनी फ़िक्र और दूसरा, अबुल आला मौदूदी का दीनी फ़िक्र और इसमें मैं मौलाना अली मियाँ को भी शामिल समझता हूँ। मौलाना अली मियाँ की फ़िक्र बदले हुए अल्फ़ाज़ में मौलाना मौदूदी ही की फ़िक्र है।

मैंने कहा कि सोचने के दो तरीक़े हैं— एक, इंक़लाब-ए-फ़र्द और दूसरा, इंक़लाब-ए-निज़ाम। तब्लीग़ी फ़िक्र के मुताबिक़ दीनी दावत का असल निशाना यह है कि फ़र्द के अंदर इंक़लाब पैदा किया जाएगा। मौदूदी फ़िक्र के मुताबिक़ दीनी दावत का निशाना यह है कि निज़ाम के अंदर इंक़लाब लाया जाए।

इंक़लाब-ए-निज़ाम की फ़िक्र सरासर ग़ैर-दीनी है, मगर बदक़िस्मती से मौलाना अली मियाँ की फ़िक्र भी बुनियादी तौर पर यही है और अगर उनकी फ़िक्र यह नही है , तो उनकी फ़िक्र यक़ीनी तौर पर ग़ैर-वाज़ह है। दीन का असल काम यह है कि फ़र्द के अंदर फ़िक्री इंक़लाब पैदा किया जाए। फ़र्द के अंदर ख़ुदा पर यक़ीन और आख़िरत की फ़िक्र पैदा की जाए। तब्लीग़ी जमात असलन यही काम कर रही है और बिला शुब्हा यही करने का असल काम है।

इन्फॉर्मल एजुकेशन

मौजूदा ज़माने में मुख़्तलिफ़ रहनुमाओं ने फॉर्मल एजुकेशन के बड़े-बड़े तालीमी इदारे बनाए। उनका ख़याल था कि वे इन इदारों में

मिल्लत के नौजवानों को तरबियत देकर एक तरक़्क़ी-याफ़्ता नस्ल बना सकेंगे, मगर ये तमाम ख़्वाब बिखर कर रह गए। कोई भी इदारा मतलूब नई नस्ल को वजूद में लाने का ज़रिया न बन सका। ऐसा सिर्फ़ इसलिए हुआ कि यह मंसूबा ग़ैर-फ़ितरी था और कोई भी ग़ैर-फ़ितरी मंसूबा इस दुनिया में कभी कामयाब होने वाला नहीं।

एजुकेशन की दो किस्में हैं— फॉर्मल एजुकेशन और इन्फॉर्मल एजुकेशन। मेरा तजुर्बा है कि सिर्फ़ फॉर्मल तालीम इल्म के हुसूल के लिए काफ़ी नहीं, ख़्वाह वह सेकुलर तालीम हो या दीनी मदरसे की तालीम। जो फॉर्मल तालीम इदारों में होती है, उसमें आदमी किसी दूसरे की बताई हुई बातों का इल्म हासिल करता है, मगर इल्म का ख़ज़ाना इससे बहुत ज़्यादा है, जितना किसी बताने वाले ने आपको बताया है। इसलिए ज़रूरी है कि आदमी फॉर्मल एजुकेशन के बाद ख़ुद मुताला करे। ख़ुद मुताले से आदमी ख़ुद दरियाफ़्त-कर्दा इल्म को हासिल करेगा और ख़ुद दरियाफ़्त-कर्दा इल्म ही से आदमी को हक़ीक़ी मारिफ़त हासिल होती है। इससे इंसान मसाइल पर ज़्यादा गहराई के साथ सोचने के क़ाबिल हो जाता है। ये लोग मामलात को गहरे अंदाज़ में समझना चाहते हैं। फ़िक्र-ओ-फ़हम उनकी ग़िज़ा होती है। वे किसी बात को उसी वक़्त मानते हैं, जबकि उसे उनकी फ़िक्री सतह पर क़ाबिल-ए-फ़हम बना दिया हो।

'अल-रिसाला' मिशन की हैसियत इन्फॉर्मल एजुकेशन की है। हमारी कोशिश यह है कि फॉर्मल एजुकेशन पाए हुए लोगों को इन्फॉर्मल एजुकेशन मुहैया की जाए, ताकि उनके अंदर आर्ट ऑफ थिंकिंग पैदा हो। दोनों तरीक़ों में कोई टकराव नहीं है। दोनों तालीमी तरीक़े एक-दूसरे के लिए तकमीली हिस्से (complementary part) की हैसियत रखते हैं। दोनों तरीक़ों को एक-दूसरे से तक़वियत हासिल होती है, मसलन— मदरसे की तालीम से अगर दीन का रिवायती

इल्म हासिल होता है, तो इन्फॉर्मल एजुकेशन के ज़रिये आदमी दौर-ए-जदीद से वाक़फ़ियत हासिल करता है और इसमें शक नहीं कि किसी इंसान के लिए दोनों ही ज़रूरी हैं।

कैसा अजीब इस्लाम

एक मुस्लिम मुल्क का वाक़या है। वहाँ 'इस्लामी इंक़लाब' आया। इसके बाद इस मुल्क में जो नई तब्दीलियाँ आईं, उनमें से एक यह है कि वहाँ की पब्लिक मुक़ामात की सीढ़ियों पर अमरीका, रूस और इसराईल के झंडों की तस्वीरें बनाई गईं, ताकि लोग उनको रौंदकर इमारतों में दाख़िल हों। —कौसर, बैंगलोर, रमज़ान 1404 हि०

यह एक मिसाल है, जिससे अंदाज़ा होता है कि वह कौन-सा दीन है, जिसे मौजूदा ज़माने के मुसलमानों ने दरयाफ़्त किया है। वह नफ़रत का दीन है। उनके नज़दीक इस्लाम का सबसे बड़ा काम यह है कि मफ़रूज़ा दुश्मनान-ए-इस्लाम की अना (ego) को ठेस पहुँचाई जाए। अगर इब्तिदाई इस्लाम का मुताला किया जाए, तो रसूलुल्लाह का तरीक़ा इसके बरअक्स मालूम होता है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम जब अपने किसी सहाबी को किसी काम से भेजते, तो यह नसीहत करते थे—

بَشِّرُوا وَلَا تُنَفِّرُوا، وَيَسِّرُوا وَلَا تُعَسِّرُوا

"लोगों को बशारत दो, उन्हें नागवारी में न डालो, उनके साथ आसानी का मामला करो, सख़्ती का नहीं।"

(सही मुस्लिम, हदीस नंबर 1,732)

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और आपके अस्हाब का इस्लाम यह था कि उन्होंने लोगों की ख़ैर-ख़्वाही में उनके लिए

दुआएँ कीं। वे इसलिए तड़पे कि लोग हिदायत को क़ुबूल करके अल्लाह की जन्नत में दाख़िल हों। उन्होंने अपने दुश्मनों से भी मुहब्बत का सुलूक किया, ताकि उनका दिल इस्लाम के लिए नरम हो। उन्होंने बिगड़े हुए लोगों के साथ तालीफ़-ए-क़ल्ब का मामला किया, ताकि उनकी फ़ितरत को जगाया जा सके, मगर मौजूदा ज़माने के मुस्लिम क़ाइदीन ने एक ऐसा इस्लाम दरयाफ़्त कर रखा है, जो इंसानों को इस्लाम से मज़ीद दूर कर देता है।

आज की दुनिया में इस्लाम के नाम पर दूसरों से नफ़रत करने वाले बहुत हैं, मगर इस्लाम के लिए दूसरों से मुहब्बत करने वाला कोई नहीं। इस्लाम के नाम पर झंडा उठाने वाले बेशुमार हैं, मगर कोई अल्लाह का बंदा ऐसा नहीं, जो इस्लाम के लिए अपने झंडे को नीचा कर ले। इस्लाम के नाम पर दूसरों से लड़ने वाले हर तरफ़ दिखाई देते हैं, मगर इस्लाम के लिए सुलह करने वाला कोई नज़र नहीं आता। इस्लाम के नाम पर बोलने वालों से ख़ुदा की ज़मीन भर गई है, मगर वह इंसान ढूँढने से भी नहीं मिलता, जो इस्लाम की ख़ातिर चुप हो गया हो। इस्लाम के नाम पर लोगों को पैरों से रौंदने वाले बहुत हैं, मगर ख़ुदा का वह बंदा कहीं दिखाई नहीं देता, जो इस्लाम की ख़ातिर लोगों को अपने सीने से लगा ले।

बे-ख़बरी का मसला

क़दीम ज़माने में मुल्की एतिबार से कोई मुसल्लमा सरहदी हदबंदी मौजूद न थी। इसकी वजह से दुनिया में वह कल्चर राइज था, जिसे एक क़दीम फ़ारसी शायर ने इन अल्फ़ाज़ में बयान किया है—

‘हर कि शमशीर ज़नद सिक्कः बनामश ख़्वानंद’

"जो शख़्स तलवार चलाता है, उसी के नाम का दुनिया में सिक्का चलता है।"

इस कल्चर ने अमलन दुनिया में एक क़िस्म की एनार्की (अराजकता) क़ायम कर रखी थी। दुनिया में मुसल्लमा (universally accepted) उसूल की बुनियाद पर क़ायमशुदा सरहदें मौजूद न थीं। इस बिना क़दीम दुनिया बड़ी तरक्की न हो सकी क्योंकि दुनिया में ज्योग्राफिकल स्टेबिलिटी (भूगोलिक स्थिरता) मौजूद न था और ज्योग्राफिकल स्टेबिलिटी के बग़ैर कोई तरक़्क़ी मुमकिन नहीं।

पहली जंग-ए-अज़ीम (1914-1918) के बाद दुनिया के सरबराहोंने इस मसले पर सोचना शुरू किया। इस सोच का यह नतीजा निकला कि दुनिया में ज्योग्रा फी हदबंदी का तसव्वुर राइज हुआ, जिसे मबनी-बर-वतन क़ौमियत (Nation State) कहा जाता है। इस उसूल को अमलन तमाम मुल्कों में तस्लीम कर लिया गया, लेकिन इस मामले में मुस्लिम लीडरों का इस्तिस्ना है, जो इस मामले में गुमराही की कैफ़ियत में मुब्तला रहे, मसलन— जमालुद्दीन अफ़ग़ानी, अमीर शकिब अर्सलान, मुहम्मद इक़बाल और सय्यद अबुल आला मौदूदी वग़ैरह। इसलिए वतनी क़ौमियत का तसव्वुर मुसलमानों में डेवलप न हो सका।

लेखक के नज़दीक पहली जंग-ए-अज़ीम ने एक जबर (compulsion) पैदा किया। इसकी वजह से मबनी-बर-वतन क़ौमियत का तसव्वुर राइज हुआ। यह बिला शुब्हा एक नेमत है, मगर इस ज़माने में मुस्लिम लीडरों में एंटी-ब्रिटिश सोच का ग़लबा था। इस मनफ़ी (negative) सोच की बिना पर मुस्लिम लीडर वतनी क़ौमियत के बारे में भी बरवक़्त कोई फ़ैसला न ले सके और मुसलमानों में वतनी क़ौमियत का मसला एक नापसंदीदा तसव्वुर की हैसियत से राइज हो गया। आज मुसलमान उसी की क़ीमत अदा कर रहे हैं। उनकी क़ौमी

वफ़ादारी आजकल हर जगह शक की नज़र से देखी जाती है। मुसलमानों में ग़ालिबन मौलाना हुसैन अहमद मदनी थे, जिन्होंने कहा था कि फ़ी ज़माना क़ौमें वतन से बनती हैं, लेकिन उनके शागिर्दों ने उनकी वफ़ात के बाद यह ऐलान करके उनकी बात को ग़ैर-मुअस्सर बना दिया कि हज़रत ने यह बात बतौर ख़बर कही थी, बतौर तहरीर नहीं।

ज्योग्राफी हदबंदी के बाद एक और मसला बाक़ी था। वह था— आलमी अमन (world peace) का मुसल्लमा (universally accepted) उसूल। यह मसला दूसरी जंग-ए-अज़ीम के ज़रिये तय हुआ। दूसरी जंग-ए-अज़ीम (1939-1945) ने हथियार का नया तसव्वुर क़ायम किया। वह था— वैपंस ऑफ मास डिस्ट्रक्शन (weapons of mass destruction) यानी दुनिया में जो हथियार राइज हुए, वे उमूमी तबाही के हथियार थे। इसका मतलब यह था कि अब ऐसे हथियार बन गए, जो दोतरफ़ा तबाही करते थे यानी आप दुश्मन को मारें, तो आप ख़ुद भी इसका शिकार होते हैं।

इस सूरतेहाल ने दोबारा लोगों के अंदर यह सोच पैदा की कि अब जंग एक ऐसी चीज़ है, जिसमें किसी फ़रीक़ को कोई फ़ायदा नहीं। इस सूरतेहाल ने यह आलमी ज़ेहन पैदा किया कि अब जंग का दौर ख़त्म हो चुका है, क्योंकि जंग किसी के लिए मुफ़ीद नहीं है। बर्तानिया के साबिक़ा प्राइम मिनिस्टर चेंबरलेन (1869-1940) ने कहा था कि जंग में कोई भी साइड अपने आपको फ़ातेह कहे, मगर हक़ीक़त यह है कि जंग में कोई जीतने वाला नहीं है, तमाम लोग हारने वाले हैं।

In war, whichever side may call itself the victor, there are no winners, but all are losers.

साबिक़ अमरीकी सदर लिंडन बी० जॉनसन (1908-1973) ने इस संगीन हक़ीक़त को इस तरह बयान किया था कि जदीद जंग में कोई फ़ातेह नहीं है, सिर्फ़ बच जाने वाले हैं।

In modern warfare there are no victors; there are only survivors.

इस तरह आलमी जंग-ए-अव्वल(First world war) और आलमी जंग-ए-सानी (second world war) दोनों ने ऐसा दबाव पैदा किया, जिसने लोगों को इस उसूल को मानने पर मजबूर किया कि अब जंग बंद करो, क्योंकि जंग में कोई जीतने वाला नहीं होगा। सब हारने वाले होंगे। इस तरह पहली जंग-ए-अज़ीम और दूसरी जंग-ए-अज़ीम के बाद दुनिया में ट्रैवेल डॉक्यूमेंट्स का उसूल राइज हुआ यानी जिसके पास पासपोर्ट और वीज़ा हो, उसे कोई रोकने वाला नहीं। ये दोनों उसूल दावत इलल्लाह के मिशन के लिए बेहद मुफ़ीद थे। इस उसूल के रिवाज ने पहली बार दुनिया में आलमी दावत के इमकान को वाक़या बनाया। अजीब बात है कि मुसलमानों ने इस उसूल को अपने मफ़ाद के लिए जाना, लेकिन दावत इलल्लाह के लिए उसकी अहमियत को वे न समझ सके। यह बिला शुब्हा मौजूदा ज़माने में मुसलमानों की सबसे बड़ी बे-ख़बरी है।

ग्रीनलैंड : एक वार्निंग

अटलांटिक और आर्कटिक के दरमियान वाक़े ग्रीनलैंड दुनिया का सबसे बड़ा जज़ीरा है। इसके नज़दीक-तरीन मुमालिक कनाडा और आइसलैंड हैं। यह ज्योग्राफ़ियातौर पर शुमाली अमरीका के बर्र-ए-आज़म (continent) का हिस्सा है। ताहम सियासी लिहाज़ से यह जज़ीरा डेनमार्क का हिस्सा है। यह दुनिया में बर्फ़ पर मुश्तमिल दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी बर्फ़ानी शीट भी है। इसके कुल रक़बे का 81 फ़ीसद बर्फ़ की चादरों से ढका हुआ है, मगर अब यहाँ की सूरतेहाल तब्दील हो रही है। बी०बी०सी० उर्दू की वेबसाइट पर छपी एक रिपोर्ट 26 जनवरी, 2019 के मुताबिक़ गुज़िश्ता दो दहाइयों के दरमियान

ग्रीनलैंड में बर्फ़ की चादर में ग़ैर-मामूली कमी वाक़े हुई है। 2003 से 2013 तक ग्रीनलैंड की बर्फ़ानी चादर में चार गुना कमी वाक़े हुई है। 2004 से 2013 की दहाई में यह अमल मुसलसल और शदीद था, जिसकी मिसाल पिछले 350 बरसों में किसी एक दहाई में नहीं मिलती है। तहक़ीक़ से हासिल-शुदा नताइज के मुताबिक़ ग्रीनलैंड का जुनूब मग़रिबी हिस्सा (south west), जो अब तक इस हवाले से बड़ा ख़तरा तसव्वुर नहीं किया जा रहा था, उसके बारे में अब यह ख़याल ज़ाहिर किया जा रहा है कि मुस्तक़बिल में समंदर की सतह बुलंद करने में अहम किरदार अदा करेगा।

कुछ दिनों पहले एक और तशवीश-नाक रिपोर्ट सामने आई है। ग्रीनलैंड में बर्फ़ का पिघलना न सिर्फ़ ऊपर से जारी है, बल्कि अंदरूनी तौर पर भी यह पिघलाव जारी है। नई तहक़ीक़ से मालूम हुआ है कि ग्रीनलैंड की बर्फ़ानी परतें नीचे से तेज़ी से पिघल रही हैं और वहाँ पानी जमा होने से पूरी आइस शीट का पिघलाव तेज़ी से बढ़ेगा और इससे आलमी समंदर की सतह मज़ीद ऊँची होगी। ग्रीनलैंड की बर्फ़ीली चादरों का रक़बा 50 हज़ार मुरब्बा किलोमीटर है, लेकिन उसकी गहराई मालूम करना अब भी मुमकिन नहीं और यही वजह है कि इसकी मॉडलिंग और नक़्शा-साज़ी नहीं की गई थी।

अब कैंब्रिज यूनीवर्सिटी के साइंसदानों, पॉल क्रिस्टोफ़र और उनके साथियों ने ग्रीनलैंड की बर्फ़ की जड़ों का पिघलाव मालूम करने का एक तरीक़ा ढूँढा है। उन्होंने लेज़र के ज़रिये उसकी गहराई और कैफ़ियत मालूम की है। पॉल ने जब तहक़ीक़ की, तो मालूम हुआ कि नीचे जो बर्फ़ पिघलकर पानी बह रहा है, वह पुराने अंदाज़े से भी 100 गुना ज़्यादा है और इसकी रफ़्तार बराह-ए-रास्त धूप से पिघलने वाली बर्फ़ से ज़्यादा थी। इसकी दो वजूहात हैं। पहली, ऊपर का गर्म पानी नीचे

जमा होकर मज़ीद बर्फ़ पिघला रहा है। दूसरी, क़ुव्वत-ए-कशिश से भी बर्फ़ पिघल रही है। इस तहक़ीक़ से यह नतीजा निकाला गया है कि जहाँ-जहाँ आइसलैंड जैसी बर्फ़ानी परतें हैं, वहाँ भी बर्फ़ पिघलने की रफ़्तार उतनी ही तेज़ हो सकती है। (urlty.co/mJTW)

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ग्लोबल वार्मिंग के ताल्लुक़ से एक जगह लिखते हैं कि यह सूरतेहाल ज़मीन के ऊपर हर क़िस्म की ज़िंदगियों के लिए संगीन ख़तरा होगी। कोई भी इंसानी तदबीर उनका मुक़ाबला करने में कामयाब न हो सकेगी। बिल वास्ता या बराह-ए-रस्त तौर पर इसका असर तमाम इंसानी आबादियों तक पहुँच जाएगा। हालात बताते हैं कि बहुत जल्द वह वक़्त आने वाला है, जबकि मौजूदा दुनिया का ख़ात्मा हो जाएगा। (अल-रिसाला; मई, 2008) और वह दिन आ जाए, जबकि तमाम लोग अपनी ज़िंदगी का हिसाब देने के लिए, क़ुरआन के अल्फ़ाज़ में, ख़ुदावंद-ए-आलम के सामने खड़े होंगे। (83:6)

इसलिए यह वक़्त का तक़ाज़ा है कि इंसान उस दिन के आने से पहले अपने लिए ज़रूरी तैयारी कर ले, ताकि वहाँ किसी क़िस्म की नाकामी का सामना न पेश आए। मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब लिखते हैं कि पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने सातवीं सदी ईस्वी में कहा था कि मेरे और क़यामत के दरमियान सिर्फ़ इतना फ़ासला है, जितना फ़ासला इंसान की दो उँगलियों के दरमियान होता है (सही अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6,505) ग्लोबल वार्मिंग का ज़ाहिरा बताता है कि यह फ़ासला अब ख़त्म हो चुका है। जदीद साइंस जिस मौसमियाती तब्दीली (climatic change) की ख़बर दे रही है। वह तब्दीली, साइंसदानों के बयान के मुताबिक़, अब इस हद तक पहुँच चुकी है कि अब उसे दोबारा उल्टी तरफ़ लौटाना मुमकिन नहीं। अब आख़िरी वक़्त आ गया है, जबकि इंसान अपने आपको बदले। हालात की यह ख़ामोश

पुकार है कि इंसान अपने आपको दुरुस्त कर ले, इससे पहले कि अपने आपको दुरुस्त करने का मौक़ा उसके लिए बाक़ी न रहे।

(देखिए अल-रिसाला; जुलाई, 2008)

—डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम, नई दिल्ली

इस्तिताअत का उसूल

इस्तिताअत का मतलब है— किसी ख़ास अमल की अंजामदेही के लिए इंसान में जिस्मानी या ज़ेहनी काम को करने की सलाहियत या क़ुव्वत या ताक़त का मौजूद होना।

An aptitude or ability for a particular activity, capacity or power to do a physical or mental thing.

मुस्लिम उलमा के नज़दीक इस्तिताअत का मतलब है— इंसान किसी चीज़ को जान या माल के ज़रिये से करने पर क़ादिर हो। यह हालत बदलती रहती है, लोगों के हालात के बदलने से और नताइज के बदलने से। (अलमोस्वा अलफ़केई ललसकाफ़, जिल्द 2, सफ़्हा 4)

क़ुरआन व हदीस के मुताले से मालूम होता है कि इस्लाम में जो अहकाम हैं, वे सब-के-सब 'इस्तिताअत' पर मबनी हैं यानी ख़ुदा के दीन में अमल ब-क़दर इस्तिताअत का उसूल है। इस्तिताअत से ज़्यादा का ज़िम्मेदार और जवाबदेह बनाना अल्लाह का तरीक़ा नहीं (अल-बक़रह, 2:286; अत-तग़ाबुन, 64:16)। यह उसूल फ़र्द (individual) के लिए भी है और सोसाइटी के लिए भी।

फ़ुक़हा का इत्तिफ़ाक़ है कि दीनी अमल की अदायगी की शर्त इस्तिताअत है—

اتفق الفقهاء على أن الاستطاعة شرط للتكليف

लिहाज़ा जो इंसान किसी अमल को अंजाम देने की इस्तिताअत नहीं रखता, उसके ऊपर उस अमल की ज़िम्मेदारी नहीं है। यह उसूल क़ुरआन-ओ-सुन्नत के बहुत सारे नसूस से साबित होता है, मसलन— क़ुरआन (2:286) में अल्लाह तआला का फ़रमान है— "अल्लाह किसी पर ज़िम्मेदारी नहीं डालता, मगर उसकी ताक़त के मुताबिक़।" (अल-मौसूआत अल-फिक़्हीय्याह अल-कुवैतीय्याह, जिल्द 3, सफ़्हा 330)

अमल ब-क़दर इस्तिताअत का ताल्लुक़ ज़िंदगी के तमाम मामलात से है। ज़िंदगी का यही वाहिद फ़ितरी उसूल है। इंसान जब दुनिया में कोई अमल करना चाहता है, तो यह हमेशा फिफ्टी-फिफ्टी इंसान का मामला होता है। इंसान उतना ही कर सकता है, जितना बाहिरी हालात उससे मुवाफ़िक़त करें। बाहिरी हालात की मुवाफ़िक़त के बग़ैर इंसान कोई काम नहीं कर सकता।

इसी तरह फ़र्द और इज्तिमा का मामला भी एक-दूसरे से बिलकुल मुख़्तलिफ़ है। जहाँ तक फ़र्द का ताल्लुक़ है, उसके ज़ाती मामलात पर उसे पूरा इख़्तियार होता है। एक फ़र्द के लिए यह मुमकिन होता है कि वह अपनी ज़ात के लिए जिस चीज़ को दुरुस्त समझे, उसे मुकम्मल तौर पर इख़्तियार करे, मसलन— अपनी हैसियत के मुताबिक़ आदिल बनना हर आदमी के अपने इख़्तियार की चीज़ है। इसके बरअक्स समाजी सतह पर अदल का निज़ाम क़ायम करना पूरे समाज का मामला है। पहली चीज़ फ़र्द के ज़ाती इख़्तियार पर मुनहसिर है और दूसरी चीज़ समाज के मज्मूई इख़्तियार पर।

एक शख़्स की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ उसी क़दर है, जो उसके बस में हो। जो चीज़ उसके बस में न हो, उसकी ज़िम्मेदारी भी उस इंसान पर नहीं। इंसान किसी अमल के वक़्त जितनी इस्तिताअत रखेगा, ख़ुदा के नज़दीक उतना ही वह उस अमल करने का ज़िम्मेदार होगा, मसलन— आम हालात में वुज़ू करके नमाज़ पढ़ने का हुक्म है, मगर आदमी जब

बीमार हो या वह ऐसी जगह पर हो, जहाँ पानी न मिले तो वह तयम्मुम करके नमाज़ पढ़ ले।

इज्तिमा का मामला फ़र्द के बरअक्स है। इज्तिमाई या समाजी मामला हमेशा कई लोगों के दरमियान होता है। समाज के मामले में वही तरीक़ा चल सकता है, जिस पर सबका इत्तिफ़ाक़ हो। इसके बरअक्स कोई तरीक़ा अगर बाहिरी तौर पर किसी की तरफ़ से समाज के ऊपर नाफ़िज़ किया जाए, तो लाज़िमन लोगों के दरमियान टकराव पैदा हो जाएगा। ऐसे मौक़े पर समाज के अंदर पहले इख्तिलाफ़ आएगा, फिर टकराव आएगा, फिर नफ़रतें बढ़ेंगी और फिर आख़िर तशद्दुद (violence) की नौबत आ जाएगी। गोया मतलूब चीज़ तो हासिल न होगी, अलबत्ता उसका बरअक्स नतीजा फ़साद की सूरत में सामने आ जाएगा। यह हक़ीक़त एक हदीस-ए-सूल में इस तरह बताई गई है—

مِنْ حُسْنِ إِسْلامِ الْمَرْءِ، تَرْكُهُ مَا لَا يَعْنِيهِ

"आदमी का हुस्न-ए-इस्लाम यह है कि वह उस अमल को तर्क कर दे, जो बे-नतीजा साबित होने वाला हो।"
(मुस्नद अहमद, हदीस नंबर 1,737)

इस मसले का वाहिद हल यह है कि फ़र्द और इज्तिमा दोनों के तक़ाज़े को एक-दूसरे से अलग कर दिया जाए। फ़र्द के लिए उसके ज़ाती दायरे में मेयार का उसूल हो और इज्तिमा के लिए इस्तिताअत (क़ाबिल-ए-अमल, practical) का उसूल। इस फॉर्मूले को एक लफ़्ज़ में इस तरह बयान किया जा सकता है—

Idealism at the individual level, pragmatism at the social level.

इस्तिताअत के उसूल को आज की ज़बान में नतीजा-रुख़ी अमल (result-oriented action) कहा जा सकता है।

—मौलाना फ़रहाद अहमद

ख़बरनामा इस्लामी मर्कज़- 280

29-30 अप्रैल, 2023 को नई दिल्ली के होटल 'दि लीला एंबियंस' में सी०पी०एस० इंटरनेशनल (नई दिल्ली) के ज़ेरे-एहतिमाम पीस कॉन्फ्रेंस का इंतिक़ाद किया गया। इस कॉन्फ्रेंस का मक़सद यह था कि तमाम सी०पी०एस० मेंबरान इस्लाम की पुर-अमन तालीम को दुनिया के हर हिस्से में पहुँचाएँ। मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के बाद सी०पी०एस० इंटरनेशनल की यह पहली कॉन्फ्रेंस थी। इसमें अल-रिसाला मिशन के तहत काम करने वाले नेशनल और इंटरनेशनल चैप्टर्स के दाइयों ने पूरी संजीदगी के साथ हिस्सा लिया और कॉन्फ्रेंस के बाद एक नई एनर्जी के साथ वापस हुए। तमाम लोगों ने यह अहद किया कि वे मौलाना साहब के बाद अमन और स्पिरिचुअलिटी के इस मिशन को नई स्पिरिट के साथ आगे बढ़ाएँगे। कॉन्फ्रेंस की कार-गुज़ारियों को जानने के लिए सी०पी०एस० इंटरनेशनल के ऑफ़िशियल यूट्यूब और फेसबुक पेज को विज़िट किया जा सकता है।

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के ज़रिये दुनिया के बेशुमार लोगों की ज़िंदगियों में तब्दीली आई है। नीचें ऐसे कुछ तास्सुरात नक़ल किए जा रहे हैं—

2015 से मैंने मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान को सुनना शुरू किया, उनकी हफ़्ता-वार क्लासों को जॉइन किया, क्योंकि मौलाना की क्लास मुझे सबसे फायेदेमंद नज़र आई। मौलाना का मिशन एक अलग मिशन था। आज के दौर में हर कोई अपने आपको दुरुस्त साबित करने में लगा हुआ है, लेकिन मौलाना ने हमें यह सिखाया कि सबसे बेहतर इंसान वह है, जो अपनी ग़लती को माने। मौलाना एक इंक़लाबी और एक रूहानी इंसान थे। आपने ख़ुदाको पहचानने

और तज़्किया-ए-नफ़्स पर बहुत ज़ोर दिया। यह बताया कि मौत के बाद की ज़िंदगी और अल्लाह तआला से मुलाक़ात का शौक़ हमें मारिफ़त से क़रीब करता है। हम लोग अँधेरे में थे। यह कह लीजिए कि फ़िज़ूल कामों में मसरूफ़ थे, लेकिन मौलाना से जुड़ने के बाद हमें हक़ीक़ी मअनों में ख़ुदा की पहचान का मौक़ा मिला। मौलाना ने हमेशा इंसान को ग़ौर-ओ-फ़िक्र का हुक्म दिया और कायनाती निशानियों के ज़रिये ख़ुदा को समझने और उसे तलाश करने के बारे में बताया। मौलाना की आवाज़ एक मुनफ़रद आवाज़ थी, जो कभी ख़त्म नहीं हो सकती। मौलाना का काम हमेशा इंसान को ग़ौर-ओ-फ़िक्र की तरफ़ ले जाता रहेगा।

—सय्यद मुहम्मद हसीब शाह नक़वी, सरगोधा

It was the month of Ramadan 2019, I was a first year student. I watched one of Maulana Wahiduddin Khan's videos on Facebook. This gave me a kind of inner inspiration and peace. Since then I am following and supporting the work of Maulana Wahiduddin Khan. Maulana Wahiduddin Khan was a mentor for me as well as for the world. He has taught me the real meaning of life. Through his books and videos, I have learnt many things, such as spiritual development, the art of life management, peace, right way of thinking, modesty and patience. He has rendered a great service in the form of Islamic literature. May Almighty Allah rest his soul in peace and grant us the strength to follow him and be a part of his Dawah mission.

—Sami Khan, Quetta; 21 April, 2023

किताब 'अस्बाक़-ए-तारीख़' पर तब्सिरा— मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहिब की किताब 'अस्बाक़-ए-तारीख़' उन मुतफ़र्रिक़ मज़ामीन का मजमूआ है, जो माहनामा 'अल-रिसाला' में छपते रहे हैं। इस किताब में बयान-कर्दा तारीख़ी वाक़यात मुख़्तलिफ़ ज़मानों से ताल्लुक़ रखते हैं। मौलाना की इस तसनीफ़ का मक़सद तारीख़ से इबरत और नसीहत हासिल करना है। उमूमन हम तारीख़ का मुताला जज़्ब-ए-फ़ख़्र की तस्कीन के लिए करते हैं, जबकि गुज़रे हुए ज़माने का मुताला नसीहत और सबक़हासिल करने के लिए होता है, जैसा कि क़ुरआन में तारीख़ी वाक़यात सबक़-आमोज़ी के लिए बयान हुए हैं। ज़ेरे-नज़र किताब में मुसन्निफ़ ने तारीख़ से सबक़ हासिल करने की कोशिश की है। यह अंदाज़-ए-फ़िक्र ज़िंदगी की तामीर का मुअस्सिर-तरीन ज़रिया है।

आग़ाज़-ए-इस्लाम से लेकर आज तक इस्लामी तारीख़ पर बेशुमार किताबें लिखी गई हैं। इन किताबों में जंगों के वाक़यात और कामयाबियों की दास्तानें हैं, जबकि इस्लाम की तारीख़ सिर्फ़ मुल्क फ़तह करने तक महदूद नहीं है। इस्लाम की तारीख़ हक़ीक़ी मअनों में इंसानी फ़िक्र के इंक़लाब की तारीख़ है। इस्लाम ने अपनी गुज़श्ता पंद्रह सदियों में करोड़ों इंसानों की ज़िंदगियाँ बदलीं। ज़िंदगी के हर शोबे में इंक़लाब बरपा किया। ऐसी हमागीर तब्दीली तीर और तलवार के ज़रिया वाक़े नहीं हो सकती है। ये तब्दीलियाँ फ़र्द-फ़र्द पर फ़िक्री मेहनत करके ही हासिल हो सकती हैं, मगर ज़्यादातर मुअर्रिख़ीन ने जंग-ओ-फ़ुतूहात का ज़िक्र किया है, जबकि इस्लाम की असल ताक़त उसकी तलवार नहीं ,बल्कि उसका अमन-ओ-मुहब्बत का पैग़ाम है। इस्लामी तालीमात ने एक नई तहज़ीब की बुनियाद रखी। अदल के परचम को बुलंद किया। इंसानियत को मुहतरम ठहराया। ख़ालिक़-ओ-मख़्लूक़ के ताल्लुक़ को वाज़ेह किया, लेकिन जंग-ओ-फ़ुतूहात के ज़िक्र में यह मुस्बत (positive) तालीमात दुसरे दर्जे में चली गईं। मौलाना वहीदुद्दीन

ख़ान ने मज़्कूरा किताब में इस्लामी तारीख़ को दुरुस्त ज़ाविया-ए-नज़र से देखने की कोशिश की है। इस किताब का मुताला क़ारी को वसीअ उल-नज़र बनाता है और वह तारीख़ से जज़्ब-ए-फ़ख़्र हासिल करने के बजाय अक़्ल और हिकमत

हासिल करता है। मौजूदा मुल्की और समाजी हालात में इस किताब का मुताला बहुत फ़ायेदेमंद है। **—मुहम्मद फ़ारूक़, लाहौर**

ऐलान

सी०पी०एस० इंटरनेशनल (नई दिल्ली) की जानिब से हिंदुस्तान के दीनी मदारिस और दीगर मिल्ली-ओ-तालीमी इदारों को मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की किताबें हदिये में भेजी जा रही हैं। इस मक़सद के तहत इदारे की जानिब से मिस्टर आसिफ़ ख़ान मदारिस में जाते हैं और वहाँ की इंतज़ामिया से इजाज़त हासिल करते हैं। फिर इन मदारिस को किताबें भेजी जाती हैं। क़ारीन-ए-अल-रिसाला और दूसरे ख़ाहिशमंद हज़रात से गुज़ारिश है कि वे आसिफ़ साहब से मनदर्जा ज़ेल नंबर पर राब्ता क़ायम करके इस सिलसिले में उनका तआवुन फ़रमाएँ।

राब्ता नंबर : +91-99185785630

Google Assistant

Amazon India

Amazon Canada

Amazon Australia

Amazon UK

Amazon US

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

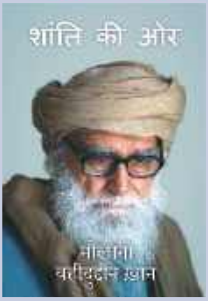

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

₹40/-

₹20/-

₹40/-

₹30/-

₹45/-

₹20/-

₹40/-